79
नवंबर-दिसंबर, 2018

पुस्तक-वार्ता

ISSN 2349-1809

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

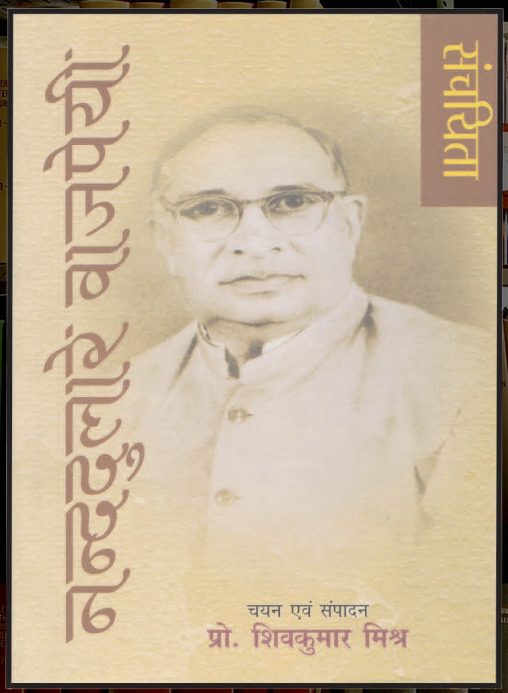

मूल्य : 1500

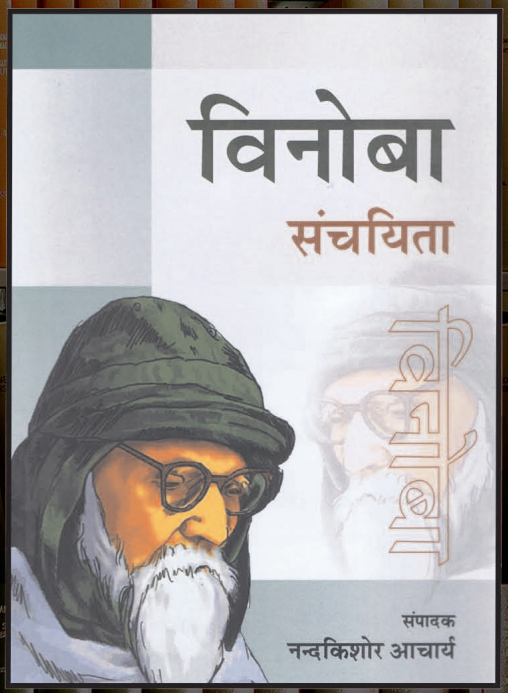

मूल्य : 900

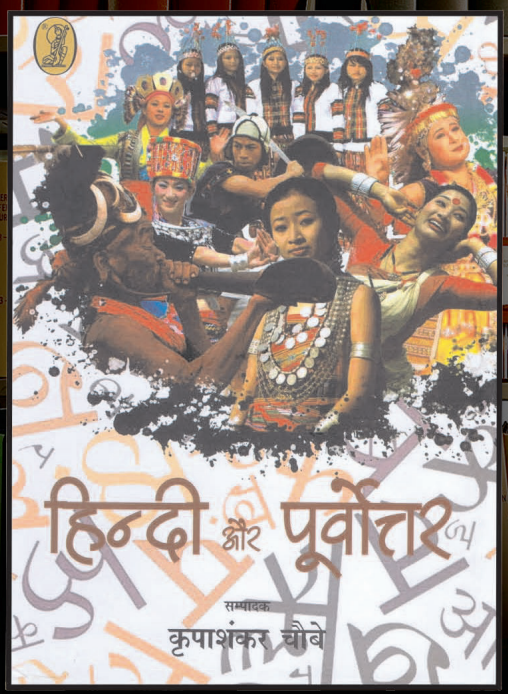

मूल्य : 495

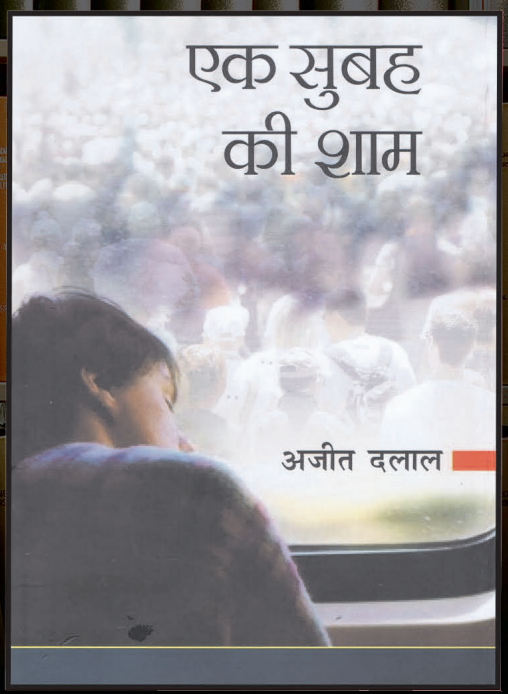

मूल्य : 225

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र),

पुस्तक-वार्ता

ISSN 2349-1809

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा का प्रकाशन

अंक: 79 नवंबर-दिसंबर, 2018

संरक्षक संपादक
गिरीश्वर मिश्र (कुलपति)

संपादक
अशोक मिश्र

सह-संपादक
अमित कुमार विश्वास

प्रकाशक
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)
Website: www.hindivishwa.org

संपादकीय संपर्क
संपादक: पुस्तक-वार्ता
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र),
मो. संपा. 7888048765, सह-संपा. 9970244359
ई-मेल: amitbishwas2004@gmail.com

संबंधित लेखकों के पत्रिका में प्रकाशित विचारों से विश्वविद्यालय और संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।
विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र वर्धा (महाराष्ट्र)।

एक अंक: ₹ 50/-
वार्षिक सदस्यता:
₹ 300/- (व्यक्तिगत),
₹ 370/- (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)
(नोट: केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगे। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें-
राजेश यादव, प्रकाशन प्रभारी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), फोन: 07152-232943

PUSTAK-VARTA

A Bimonthly journal of Book Reviews in Hindi published by Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Post - Hindi Vishwavidyalaya, Gandhi Hills, Wardha-442001 (Maharashtra)

डिजाइन
ज्योत्स्ना पलसुलेदेसाई

मुद्रण : क्विक ऑफसेट, दिल्ली - 110032

इस बार

शब्दों के इस अपार संसार में...

इतना प्रभूत लेखन हर साल सामने आता है कि शब्दों के घटाटोप में संवेदना जैसे रद्दी के भाव तुल जाती है। ऐसे में कभी-कभी कहने का मन होता है, वही लिख-लिख के क्या होगा, वही किस्सा पुराना है। दिनों दिन शब्दों का कोलाहल इतना बढ़ता जा रहा है और बुद्धिजीवियों, कवियों, लेखकों के यहां शब्दों की इतनी खपत है कि संशय होता है कि कहीं शब्दों का अवमूल्यन तो नहीं हो रहा। पर जैसा कि होता है, साहित्य की महोदधि में शब्दों का एक अटूट प्रवाह है जिसमें सीप, शंख, घोंघे सभी प्रवाहित हैं तथापि, सार्थक शब्दों को शब्दों के अपार अंबार में खोजना होता है।

शब्दों के इस अपार संसार में... / ओम निश्चल	06
समय के दस्तावेज को समेटती 'देखणी'/ दामोदर खड़से	14
संवेदना के नए क्षितिज/ चित्रेश	16
अन्वेषण की कविताएं / सुधीर रंजन सिंह	18
नर से नारायण बनने का संदेश/ दिनेश पाठक 'शशि'	20
मर्म को छूती कहानियां / ऋचा द्विवेदी	23
निम्नवर्गीय स्त्री जीवन का प्रामाणिक आख्यान/ शिवदयाल	25
प्रकृति की स्वाधीनता का उत्सव रचती कविताएं/ मनोज कुमार पांडेय	29
नैतिक और मानवीय मूल्यों की गिरती साख / संतोष कुमार बघेल	31
चिर-परिचित अनुभवों को बांचती कविताएं / अर्पण कुमार	34
मीरां का रचना संसार / पल्लव	37
सूरज को चुनौती देता पलाश/ डी.एन. प्रसाद	39
कौन-सी नदी कहां डूब मरी?/ उमेश यादव	41
आदिवासी जीवन के संघर्षों का महाआख्यान/ कैलाश मंडलेकर	44
भाषा, शिक्षा और समाज के बहाने / कालू राम शर्मा	47
महाभारत आख्यान/ एस. तंकमणि अम्मा	49
निम्न वर्ग का जीवंत दस्तावेज/ नीरजा पांडेय	51
बिहार दर्शन एक अंतर्कथा/ मुकेश कुमार	53
असमाप्त कविता का कवि/ मनोज मोहन	56
साहित्यकारों पर एक जरूरी विमर्श/ अशोक नाथ त्रिपाठी	58

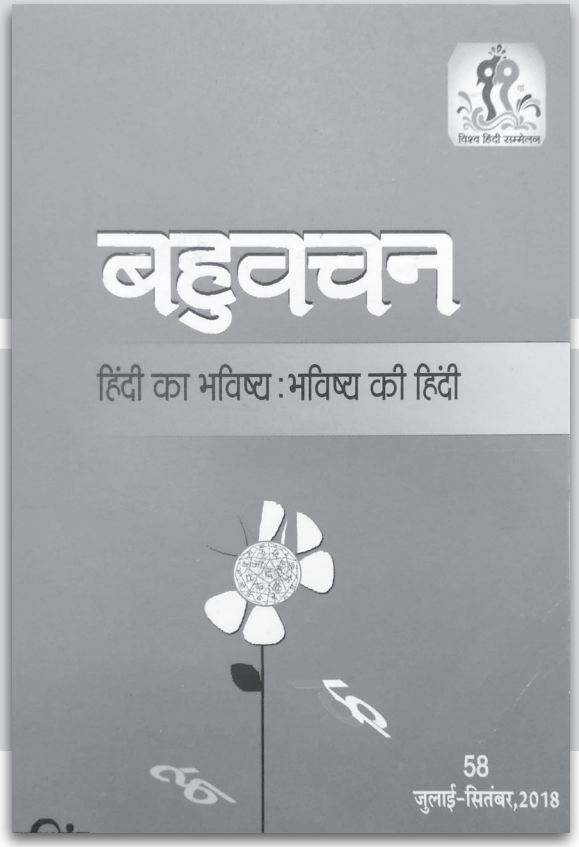

बहुवचन : मराठी साहित्य विशेषांक

अंक के रचनाकार

विरासत	:	कुसुमाग्रज, विंदा करंदीकर, नारायण सुर्वे, दिलीप चित्रे आदि
विशेष	:	भालचंद्र नेमाडे
साक्षात्कार	:	वसंत आबाजी डहाके, नागनाथ कोतापल्ले
लेख	:	सूर्यनारायण रणसुभे, निशिकांत ठकार, रणधीर शिंदे, कृपाशंकर चौबे, आशुतोष पोद्दार, रामचंद्र कालुंखे, संजय आर्वीकर, हृषीकेश आर्वीकर, रवींद्र किबदुने, भानु काले, नीलिमा गुंडी, संदीप सपकाले आदि
कहानियां	:	भारत ससाणे, सदानंद देशमुख, आसाराम लोमटे, मेघना पेठे, मोनिका गजेंद्रगड़कर, मधुकर धर्मापुरीकर, प्रतिभा जोशी आदि।
नाटक	:	महेश एलकुंचवार
कविताएं	:	ना.धों. महानोर, यशवंत मनोहर, वसंत आबाजी डहाके, प्रभा गाणेरकर, चंद्रकांत पाटील, नारायण कुलकर्णी, सतीश कालसेकर, श्रीकांत देशमुख, मल्लिका अमरशेख, मनोहर जाधव, शरण कुमार लिंबाले, अशोक कोतवाल, अरुण काले, अनुराधा पाटील, गणेश विसपुते, दासू वैद्य, सायमन मार्टिन, प्रफुल्ल शिलेदार, आसावरी काकड़े, नागनाथ मंजुले, विजय चोरमारे, मंगेश नारायण काले, मनोज बोरगांवकर, बाजाजी महदन इंगले, अनिल साबले, बालाजी सुतार, सारिका उबाले, लोकनाथ यशवंत, शशिकांत हिंगोनेकर, अरुण शंवते, संजीवनी तलेगांवकर आदि। साथ ही, अन्य विविध सामग्री।
अतिथि संपादक	:	दामोदर खड़से

2018 से गुजरते हुए...

वर्ष 2018 का अवसान होने को है। यह सिलसिला वर्ष दर वर्ष काल चक्र के हिसाब से चलता ही रहता है। हिंदी में पठन- पाठन संस्कृति का निर्माण करने में हिंदी की पत्रिकाओं, किताबों व पुस्तकालयों की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि पाठकों की रूचि को परिष्कृत करने में इनका बहुत बड़ा योगदान है। यहां यह बताना जरूरी है कि पिछले दो दशकों के दौरान सूचना प्रौद्योगिकी के असीमित विस्तार ने शिक्षित समाज की रूचियों में अच्छा खासा बदलाव किया है, जिसे हम आज मोबाइल क्रांति, डिजीटल- इंटरनेट क्रांति के नाम से जान रहे हैं। इंटरनेट के आगमन के बाद हिंदी में किताबों की बिक्री में कुछ कमी जरूर आई है लेकिन एक दूसरा पहलू यह है कि साहित्य इंटरनेट के माध्यम से हिंदी के नए पाठकों तक अपनी पहुंच बना रहा है। इस परिवर्तन की एक बड़ी वजह यह है कि हिंदी में आज जो इक्कीस से तीस साल की युवा पीढ़ी है और जिसके हाथों में किस्म-किस्म के मोबाइल, आईफोन, आईपैड हैं, उस पर वह ऑनलाइन न्यूज पेपर से लेकर, यूटयूब, टीवी, ट्वीटर, किंडल बुक, सोशल मीडिया, फेसबुक सहित बहुत कुछ मनोनुकूल ढंग से खोजती, देखती तथा पढ़ती रहती है। दरअसल यह युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से इस मायने में बिलकुल अलग है तो उसकी पठन रूचियां किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में बैठकर पढ़ने वाली नहीं हैं। यहां एक और उल्लेखनीय तथ्य है कि इंटरनेट पर हिंदी में साहित्यिक वेबसाइटों और ब्लागिंग व ई पत्रिकाओं ने काफी सार्थक हस्तक्षेप किया है। आज हम हिंदी में लिखे जा रहे साहित्य को महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के 'हिंदी समय' वेबसाइट के बिना बिलकुल नहीं समझ सकते हैं। दूसरी ओर हम अंतर्जाल पर विचरण करते हैं तो पाते हैं कि 'जानकी पुल', 'शब्दांकन', 'समालोचन', 'रेख्ता' जैसी अनगिनत साहित्यिक वेबसाइटों पर साहित्य की गंगा बह रही है तो 'द वायर', 'सत्याग्रह', 'मीडिया विजिल', 'रविवार', 'बीबीसी हिंदी' सहित लगभग सारे समाचार पत्रों और टीवी चैनलों की समाचार केंद्रित बेबसाइटें हैं जिनको आज का पाठक या कमोबेश हम सभी वैचारिक खुराक के लिए पढ़ना पसंद करते हैं। इन सभी नए माध्यमों पर कुछ-कुछ मौलिक ढंग की कोशिशें हुई हैं जो कि परंपरागत मुद्रित पत्रिकाओं और किताबों के प्रचलन से काफी अलहदा हैं। यह माध्यम बहुत तेजी के साथ समाज के शिक्षित वर्ग में अपनी जगह बना रहा है। यह छपे हुए शब्दों को एक अलग प्लेटफार्म पर लोकप्रियता दिलाने की कोशिश भी है। यहां यह अंतर भी साफ दिखता है कि देश के कोने कोने या फिर समाज के हर वर्ग तक अंतर्जाल का यह माध्यम नहीं पहुंचा है। आज हिंदी प्रकाशन की दुनिया में कुछ अलग करने का इरादा लेकर भी प्रकाशक आ चुके हैं। यह भी दिख रहा है कि फेसबुक पर सक्रिय बहुत सारे लेखकों का भी एक वर्ग तैयार हो चुका है और उस लेखन को कुछ प्रकाशक खासी तवज्जो देकर प्रकाशित कर रहे हैं। ये प्रकाशक इंटरनेट माध्यम से ही किताबों की बिक्री भी कर रहे हैं और कुछ हद तक सफलता भी हासिल कर रहे हैं। हम कह सकते हैं कि जैसे-जैसे नए माध्यम सामने आएंगे वैसे-वैसे किताबों की दुनिया भी कुछ कुछ बदलाव करती रहेगी क्योंकि कहा जाता है कि समय के साथ कदमताल न करने वाला एक न एक दिन अप्रासंगिक हो जाता है।

वर्ष 2018 हिंदी साहित्य में वरिष्ठ जनों की विदाई का साल भी रहा। हमारे बीच स्व. दूधनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, विष्णु खरे, अभिमन्यु अनत, गोपालदास 'नीरज', अटलबिहारी वाजपेयी, श्याम कश्यप, हिमांशु जोशी की अनुपस्थिति एक बड़ी रिक्ति को जन्म दे रही है। इन सभी को हमारी श्रद्धांजलि।

अंक में वर्ष 2018 की किताबों पर चर्चित कवि आलोचक ओम निश्चल का पड़तालपरक लेख दिया जा रहा है। इसके साथ ही पूर्व की भांति कविता, कहानी, आलोचना और अन्य सामाजिक विमर्शों से संबंधित पुस्तकों की मूल्यांकनपरक समीक्षाएं दी जा रही हैं। 'पुस्तक-वार्ता' का उद्देश्य ही हिंदी में प्रकाशित हो रही पुस्तकों का समुचित मूल्यांकन और पाठकों तक उसकी जानकारी को पहुंचाना है। यह अंक कैसा लगा, यह पत्र लिखकर, एसएमएस संदेश से या ईमेल भेजकर अवगत कराएं। आपके सुझावों व प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा।

अशोक मिश्र

साहित्य : 2018

शब्दों के इस अपार संसार में...

साल 2018 के साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि

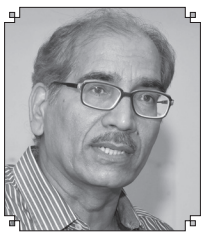

ओम निश्चल

साहित्यकार

संपर्क :
जी-1/506 ए, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-110059
मो. 8447289976

हर साल की तरह साल 2018 के दौरान भी हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। किंतु जिस तरह अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में विधाओं का विस्तार है वह वस्तु वैविध्य हिंदी के प्रकाशन संसार में नहीं है। आज भी यहां कविता, कहानी, उपन्यास और कथेतर की थोड़ी-सी विधाएं ही देखी जाती हैं। यह अवश्य है कि इधर पिछले दो दशकों से आत्मकथाओं के क्षेत्र में काफी नई पुस्तकें आई हैं। दलित आत्मकथाओं ने अपना एक संसार रचा है। पीड़ा करुणा से रची-बची दलित लेखकों की आत्मकथाओं ने हिंदी में दलित विमर्श की एक बड़ी बहसतलब तस्वीर निर्मित की है। हमारा समाज किस तरह दलितों को देखता आया है, ये आत्मकथाएं समाज की एक सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। यह और बात है कि इनमें से कुछ ही आत्मकथाएं ऐसी हैं जो गद्य के विशिष्ट स्थापत्य से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। हिंदी में जीवनी साहित्य का विकास वैसा नही हुआ जैसा अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में। साहित्य अकादेमी के विनिबंध जरूर प्रकाशित होते रहे हैं किंतु इस विधा को हिंदी साहित्य के दिग्गज प्रकाशकों ने बहुत तरजीह नहीं दी। लिहाजा विनिबंध में एक सम्यक किंतु सारभूत मूल्यांकन तो होता है किंतु जीवन के तमाम पक्षों की वैसी तस्वीर सामने नहीं आती जैसी आनी चाहिए। इधर कुछ सालों से निबंधों के क्षेत्र में सूनापन आया है। प्रायः समाचार पत्रों के संपादकों की संपादकीय टिप्पणियों की पुस्तकें जरूर कुछ प्रकाशक छापते रहे पर वे उनमें अधिकतर समसामयिक विषयों पर उनके अग्रलेखों का संकलन होता है।

वैचारिक निबंधों में रामविलास शर्मा, विद्यानिवास मिश्र, प्रभाष जोशी, प्रभाकर श्रोत्रिय के जाने के बाद एक सूनापन आया है। नामवर सिंह के पुराने निबंधों के चयन जरूर सामने आए हैं किंतु अपने समय के साहित्यिक मुद्दों पर ज्यादा केंद्रित दिखते हैं। द्वाभा के निबंध इसके प्रमाण हैं। किंतु बकलम खुद की तरह के निबंध उन्होंने अरसे से नहीं लिखे। ललित निबंध विधा भी इन दिनों बहुत अछूती है। कुबेरनाथ राय, विवेकी राय व विद्यानिवास मिश्र के ओझल होते ही इस ओर लेखकों ने बहुत कम रूख किया है। इसलिए बहुत दिनों बाद आई अष्टभुजा शुक्ल के ललित निबंधों की पुस्तक पानी की पटकथा अंधेरे वक्त में लालटेन की तरह है। पिछले दो दशकों में साक्षात्कार की विधा बहुत फली फूली है किंतु जो रस सोबती वैद संवाद में देखा गया वह रस बातचीत से गायब हुआ है। बातचीत में न तो लेखकों की रसिक वृत्ति उजागर होती है न समकालीन लेखकों के प्रति सहवर्तिता। लिहाजा आत्मगौरव के गान से भरी हुई बातचीत के अलावा बहुत कम बातचीत हाल के वर्षों में आई जिसने इस विधा को एक क्लासिक किस्म की गंभीरता दी हो। एक समय ज्यां पॉल सार्त्र से सीमोन द बुआ की बातचीत सामने आई थी - एडियू : ए फेयरवेल टू सार्त्र। लगभग 200 के आस पास की वह पुस्तक सार्त्र के पूरे निजी व साहित्यिक वैचारिक व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है। डायरी विधा में कुछ काम हुआ है। किंतु विश्वनाथ प्रसाद तिवारी व कुंवर नारायण की डायरी के अलावा कोई प्रतिनिधिक साहित्यिक डायरी देखने में नहीं आई।

संस्मरणों ने एक विधा के रूप में इधर बहुत ख्याति अर्जित की है किंतु बहुधा संस्मरण केवल आत्मश्लाघा से भरे हुए होते हैं। वैसे संस्मरण जिनसे कालखंड विशेष के साहित्यिक जीवन पर प्रकाश पड़े, कम ही लिखे जा रहे हैं। आत्मकथाओं और संस्मरणों दोनों विधाओं में लेखक का मैं, मैं ज्यादा मुखरित होता है, वस्तुनिष्ठता भी संशय के घेरे में रही है।

साहित्य के इस मौजूदा परिदृश्य में जहां मुखरता दिनों दिन बढ़ रही है, साल 2018 के साहित्यिक परिदृश्य का जायजा लेना सहज नहीं है। हर साल बहुत सारी पुस्तकें छपती हैं, कुछ महत्वपूर्ण कुछ अतिमहत्वपूर्ण। छपाई की सुविधा ने यह काम आसान कर दिया है कि कोई कुछ भी लिखे और छपाना चाहे तो आज कोई परेशानी नहीं। कुछ मुद्राओं की आवश्यकता है, बस पुस्तक छप कर तैयार। तथापि हर साल लिखे हुए शब्दों की अपनी अहमियत होती है तथा हम हर विधा में उत्तम पुस्तकों की तलाश में रहते हैं। आखिर साल 2018 में क्या कुछ ध्यातव्य छपा तथा कौन-कौन सी विधाएं ज्यादा मालामाल हुईं, किन विधाओं में अच्छी कृतियों का अभाव रहा। आइए देखते हैं साल 2018 में सर्वोत्तम लेखन का एक विहंगम जायजा ।

इतना प्रभूत लेखन हर साल सामने आता है कि शब्दों के घटाटोप में संवेदना जैसे रद्दी के भाव तुल जाती है। ऐसे में कभी-कभी कहने का मन होता है, वही लिख-लिख के क्या होगा, वही किस्सा पुराना है। दिनों दिन शब्दों का कोलाहल इतना बढ़ता जा रहा है और बुद्धिजीवियों, कवियों, लेखकों के यहां शब्दों की इतनी खपत है कि संशय होता है कि कहीं शब्दों का अवमूल्यन तो नहीं हो रहा। पर जैसा कि होता है, साहित्य की महोदधि में शब्दों का एक अटूट प्रवाह है जिसमें सीप, शंख, घोंघे सभी प्रवाहित हैं तथापि, सार्थक शब्दों को शब्दों के अपार अंबार में खोजना होता है।

कविताओं का संसार

जहां तक कविताओं का ताल्लुक है, केदारनाथ सिंह व कुंवर नारायण की कविताओं की पुस्तकें उनके जाने के बाद उनके सारभूत कवित्व की याद दिलाती हैं। 'मतदान केंद्र पर झपकी' केदार जी का संग्रह है तो 'सब इतना असमाप्त' कुंवर नारायण का। कुंवर नारायण के जीवन का आखिरी छोर बहुत ही वेदना से भरा है। वे अंत तक आकर अपनी दृष्टि खो चुके थे पर जीवन-दृष्टि से संपन्न कुंवर नारायण अंत तक एक कवि का विरल स्वप्न संजोते रहे। कविता से एक असमाप्ति रोमांस जीते हुए वे जीवन की हिलकोर को कई कोणों से निरखते-परखते रहे। अपनी तरह से खिलने मुरझाने की आजादी की चाह रखते हुए वे आदिवासी जीवन की बुनियादी अभिलाषाओं को वाणी देते रहे व पर्यावरण और पारिस्थितिकी की चिंता से ग्रस्त 'बचाना है नदियों को नाला हो जाने से...' की गहरी व कातर गुहार लगाते रहे। सब इतना असमाप्त उनके आखिरी दिनों की तमाम कविताओं व डायरियों, नोटबुकों में सहेजी कविताओं का संपादित संग्रह है। उनके जीवन में अनेक शिखर छुए, पूंजी से लगभग अनासक्त कुंवर नारायण ने शब्दों की जो साहसिक व अकेली राह चुनी वह उनके जीवन को अंत तक रोशन करती रही। केदारनाथ सिंह हर वक्त अपनी स्मृतियों के धुंधलके में जीते थे तथा गद्य लिखने के क्षणों में भी वे अपनी कविताओं की धुरी नहीं छोड़ते थे। उनकी कविताएं न तो स्थूल शब्दों के घेरे में बंद नजर आती हैं, न आलंकारिक प्रयोगों से लैस। वे सहज बातचीत करती हुई हमें एक ऐसे बिंदु पर लाकर छोड़ देती है कि हम अचरज से भर उठते हैं। वे हर क्षण इस कवि-चिंता से जूझते दिखाई देते हैं कि आखिर हमारी मनुष्यता को क्या हो गया है! उनकी कविताओं में

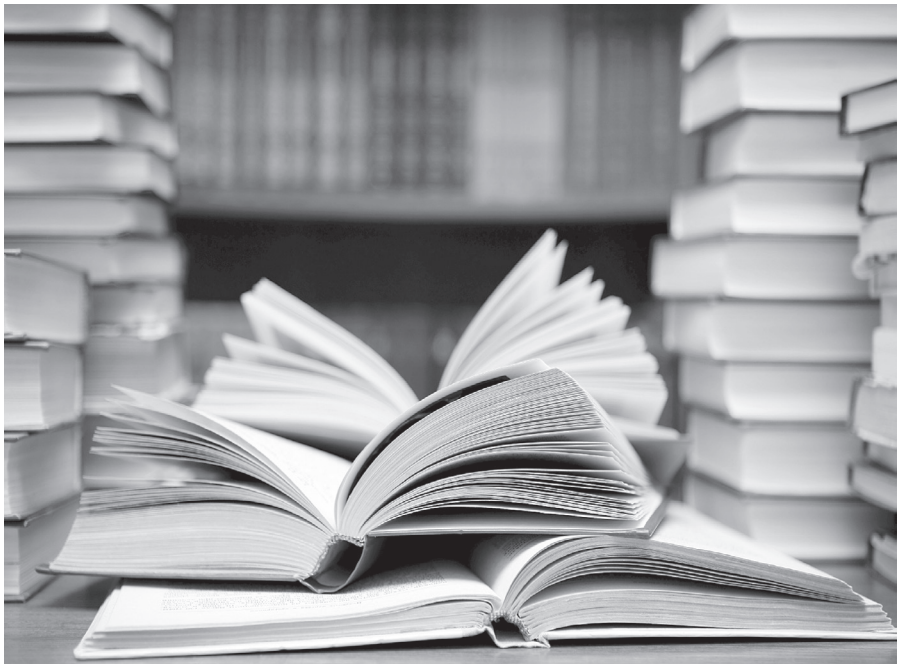

हर साल की तरह साल 2018 के दौरान भी हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। किन्तु जिस तरह अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में विधाओं का विस्तार है वह वस्तु वैविध्य हिंदी के प्रकाशन संसार में नहीं है। आज भी यहां कविता, कहानी, उपन्यास और कथेतर की थोड़ी-सी विधाएं ही देखी जाती हैं।

कहीं भी हिंसा के छींटे या लाल रंग बिखरे नहीं दिखते पर वे अपनी विचारणा में प्रगतिशीलता का दामन नहीं छोड़ते। हां, ऐसा करते हुए भी उनकी पहली शर्त कविता को शुद्ध कविता की कसौटी पर खरा देखने की रही है।

दोनों बड़े कवियों की कविताएं इस बात का परिचायक हैं कि बड़े कवियों के पास अंत तक बहुत कुछ होता है जो संजोने लायक होता है। ये कविताएं आगामी पीढ़ी के लिए वसीयत की तरह हैं। नब्बे की ओर अग्रसर मलय का भी नया संग्रह 'वाचाल दायरों से दूर' उनके अथक कविता प्रयत्नों का एक ज्वलंत उदाहरण है। मलय इस वय में भी कविता, गद्य दोनों विधाओं में सक्रिय हैं, यह आश्वस्ति का विषय है। जाबिर हुसैन की कविताओं के तीन संग्रह इस साल प्रकाशित हुए 'ओक में बूंदें', 'कातर आंखों ने देखा' एवं 'आधे चांद का नौहा'। जाबिर हुसैन अपने सामाजिक सरोकारों के गद्य के लिए जाने जाते रहे हैं। पर गद्य के नैरेटिव के अंतराल को वे कविताओं से भी भरते रहे हैं। ये संग्रह इसके प्रमाण हैं। राजस्थान की विदग्ध आवाज सवाई सिंह शेखावत के संग्रह 'निज कवि धातु बचाई मैंने' व इंदुशेखर ततपुरुष के संग्रह 'पीठ पर आंख' ने साल की शुरुआत में आकर पीठ पर धौल जमाई तो साल के आखिरी दिनों में हेमंत शेष के संग्रह 'प्रायश्चित-प्रवेशिका' ने अचानक चकित कर दिया। इतना परिपक्व संग्रह उनके ही अब तक के संग्रहों में ऊपर रखने लायक कि क्या कहें। शेखावत भी यहां कविता के शिखर पर आरुढ़ मालूम होते हैं।

पदमा सचदेव 'वीर बहूटिया' संग्रह से कविताओं की दुनिया में अरसे बाद लौटी हैं। संस्मरणों के रस में पगी व डोगरी की इस ख्यामत

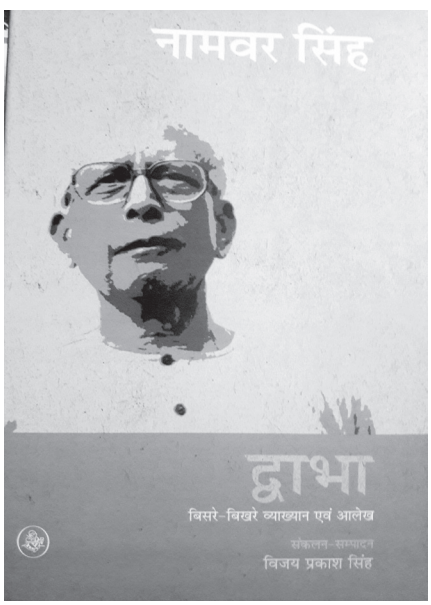

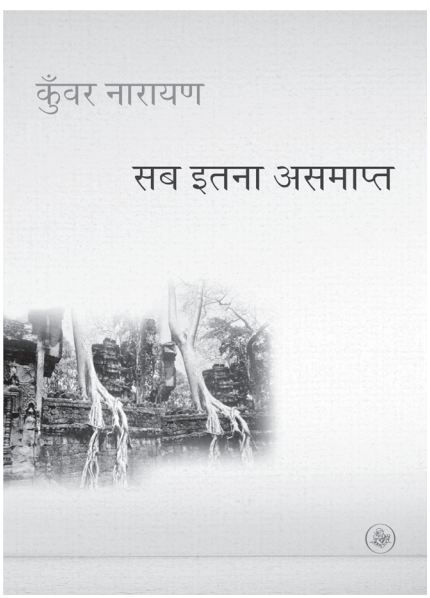

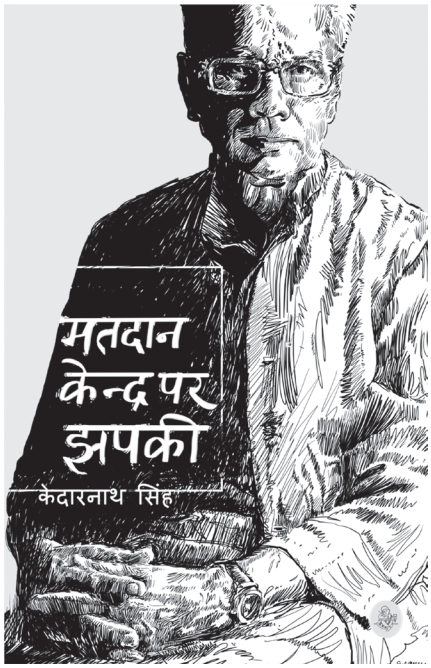

कवयित्री के पास कविताओं का एक अलग संसार है। वरिष्ठ कवियों में लीलाधर मंडलोई का संग्रह 'जलावतन' - आज के विस्थापन के दुःसह परिदृश्य से गुजरते हुए विश्व मानवता के हालात का जायजा लेता है। सरोकारों का ऐसा निनाद कम देखने को मिलता है जहां कातर मनुष्यता के पक्ष पर उसकी वाणी ऋषियों के शाप की तरह बरसती है और कहती है : 'जो मरे वे फिर जन्म लेंगे। जिन लेखकों की आंख से बहा एक भी आंसू/ वे खड़े होंगे बेखौफ धरती के दुखों में। ...जिन औरतों ने जलावन बटोर कर रोटियां पकायीं भूखों के लिए/ वे जंगल की रक्षा में एक दिन आवाज को आकाश करेंगी/ जो शामिल हैं दुनिया की तबाही में / इंसान उन्हें घसीट लाएंगे एक दिन जनता की अदालत में/ ईश्वर की परवाह किए बगैर, दीमकें उन्हें चट कर जाएंगी।' (ईश्वर की परवाह किए बगैर, पृ. 81) मंडलोई की यह इबारत आतताइयों के लिए कवि का शाप है।

इसी साल आए सुमन केशरी के संग्रह 'पिरामिड की तहों में' तथा सुधीर रंजन सिंह के संग्रह 'शायद' राहत की तरह हैं। पवन करण के संग्रह 'स्त्री शतक' ने भी साहित्यिक दुनिया का ध्यान खींचा है जिसमें उन्होंने सनातन काल से स्त्रियों के प्रति पौरुषेय दृष्टि का दो टूक किया है। कविताओं में निलय उपाध्याय की 'मुंबई की लोकल' का रंग फीका रहा तो गगन गिल के संग्रह 'मैं जब तक आई बाहर' और ज्योति चावला के संग्रह 'जैसे कोई उदास लौट जाए दरवाजे से' ने आश्वस्त किया कि दोनो कवयित्रियां स्त्री मन और अपने समय के जागरूक कथ्य से वाबस्ता हैं। नई कवयित्री अनुराधा सिंह के पहले ही संग्रह 'ईश्वर नहीं, नींद चाहिए' ने अपने अंदाजेबयां से सबका मन मोहा। कुछ-कुछ अमूर्तन और सांकेतिक भाषा और बिंबों की रोशनी में ये कविताएं एक मीठी नींद की तरह आश्वस्त करती हैं। साथ ही अनूप सेठी के संग्रह 'चौबारे पर एकालाप', तिथि दानी के संग्रह 'प्रार्थनारत बत्तखें', अनिल अनलहातु के संग्रह 'बाबरी मस्जिद तथा अन्य कविताएं' अपने कथ्य में समाजधर्मी हैं। जसिंता केरकेट्टा अपने संग्रह 'जड़ों पर जमीन' आदिवासी चेतना की कविताओं की एक मजबूत कड़ी है तथा उसी देशकाल की कवयित्री निर्मला पुतुल की परंपरा को ही आगे बढ़ाती हैं। दलित कविता की एक आवाज असंगघोष भी हैं जिनका संग्रह 'अब मैं सांस ले रहा हूं' इस दिशा में उनका एक नया कदम है। इस साल 'जनसंदेश टाइम्स' के प्रधान संपादक सुभाष राय का कविता संग्रह 'सलीब पर सच' बहुचर्चित संग्रहों में से एक है जिसकी कविताएं समाज के विसंगत परिदृश्य का आईना हैं। कोई कवि अपनी कवि-परंपरा से ही जाना-पहचाना जाता है। सुभाष राय उस कवि परंपरा की कड़ी हैं जिनकी कविताओं में आत्मचेतस उजाला है। उनके कवि की आंख निर्भय है। वह

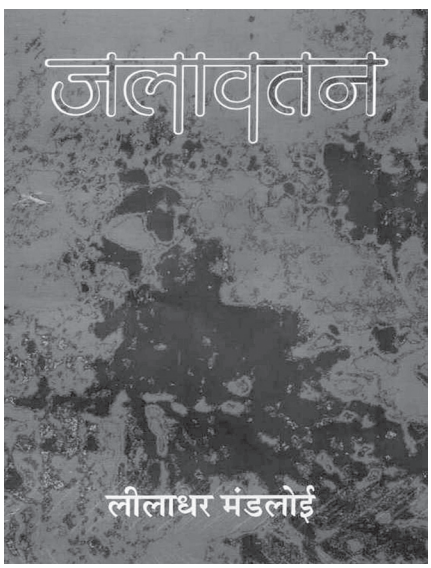

पीयूष-स्रोत सी बहने वाली स्त्रियों के आधुनिक संस्करण वाली स्त्री प्रजाति की आती हुई आवाज को लोकेट करते हैं जो न पद्मिनी होना चाहती हैं, दासियां, न देवदासियां, न आंचल में दूध और आंखों में कातरता लिए अबला... यह आत्मचेतस स्त्रियों का दौर है जो अपने अस्तित्व के लिए किसी पुरुषसूक्त पर निर्भर नहीं है। उसके तोड़ने और रचने की समझ है।

इस साल के दो कविता संग्रह हमें अपनी उपस्थिति से अलग-सा अहसास कराते हैं। रजा फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित महेश वर्मा का संग्रह 'धूल की जगह' अपने शांत और थिर नैरेटिव से शुद्ध कविता का ऐसा आस्वाद देता है जैसा आज के कोलाहल से भरे कविता जगत में दुर्लभ है। महेश वर्मा युवा की परिधि से बाहर जाकर भी युवतर चेतना से संपन्न लगते हैं तो प्रकाश के असमय निधन के बाद प्रकाशित संग्रह 'आवाज में झर कर' - प्रकाश की काव्यसंवेदना रजा फाउंडेशन की एक प्रणति है। प्रकाश का पहला संग्रह लगभग अनदेखा ही चला गया। अन्य कवियों में भावना शेखर के संग्रह 'मौन का महाशंख' ने उन्हें कविता के मार्ग पर एक कदम और आगे अग्रसर किया है । कविता में एक धारा अध्यात्म और चिंतन की भी प्रवाहित रहती है। मुनि रुपचंद का संग्रह 'केवल तुम नहीं हो' इसी कोटि में आता है। अपनी उत्तप्त प्रणय चेतना को शब्दों में अंतर्भूत करते हुए सुशोभित शक्तावत ने 'मैं बनूंगा गुहमोहर' को कविता के समस्त रसायनों से भर दिया है तो 'मलयगिरि का प्रेत' में प्रकृति और जीवन की तासीर को अनेक कविताओं में सिरजा है तथा कविता की रीढ़ में पग पग पर रोमांच पैदा किया है। युवा कवि अंबर पांडेय की काव्यकृति 'कोलाहल की कविताएं' तथा मोनिका कुमार की कृति आश्चर्यवत् कविता में एक नए आस्वाद का परिचायक होंगी इसमें संदेह नहीं। नित्यानंद गायेन के दो संग्रह लगभग एक साथ आए- 'तुम्हारा कवि' व 'इस तरह ढह जाता है एक देश'। कविता में अपने वाम विचारों के लिए पहचाने जाने वाले नित्यानंद की भाषा में एक खास किस्मत की आंदोलनधर्मिता है। दक्षिण भारत-हैदराबाद की कवयित्री उषारानी राव का कविता संग्रह सत्ताएं संवाद नहीं करतीं भी आश्वस्तिदाई संग्रह है। मराठी कविता का एक चयन मराठी कवि प्रकाश भातम्ब्रेकर ने 'मराठी कविता का समकाल' नाम से किया है। युवा कवि शंकरानंद के संग्रह 'इनकार की भाषा' की कई कविताएं समकालीन कविता के लिए उदाहरणीय बन गई हैं यथा, पानी के लिए, न्याय की बात व पूरी पृथ्वी विदर्भ।

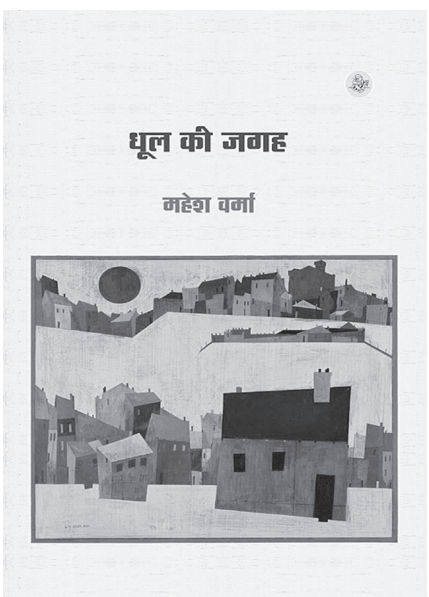

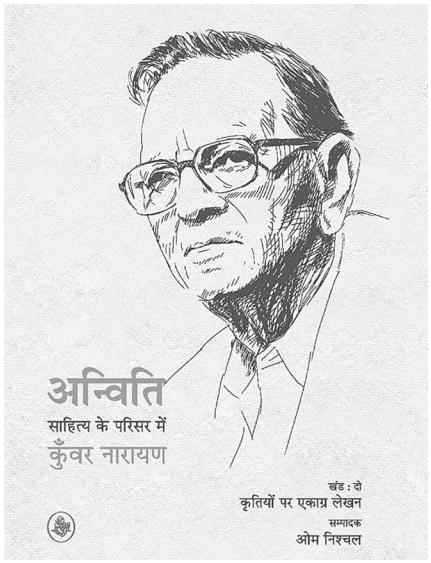

उपन्यास एवं कथा साहित्य

उपन्यास विधा में इस साल उल्लेखनीय कृतियों में ज्ञान चतुर्वेदी, सूर्यबाला, गोविंद मिश्र, गीतांजलिश्री, मधु कांकरिया, गिरिराज किशोर के उपन्यास चर्चा में रहे तो आखिरी दिनों में आया सुधाकर अदीब का उपन्यास कथा विराट पटेल पर एक पठनीय किस्सागोई की सौगात है। 'पागलखाना' में ज्ञान चतुर्वेदी ने अपने विट का पूर्ववत इस्तेमाल करते हुए हमारे समय के भूमंडलीकृत परिदृश्य से जोड़ा है तो कौन देस को बासी-वेणु की डायरी के पृथुल कथ्य विस्तार में सूर्यबाला ने विदेश की मनो सामाजिक पृष्ठभूमि को अपने सुघर नैरेटिव में विन्यस्त किया है। अपने उपन्यासों से पहचाने जाने वाले गिरिराज किशोर का 'आंजनेय जयते' उतना धारदार नहीं बन पड़ा है जिस धार के लिए वे जाने जाते हैं। वीरेंद्र सारंग के दो उपन्यास इस साल आए। 'बांझ सपूती' एवं 'आर्यगाथा'। किंतु किस्सागोई में वह रवानगी नहीं है जैसी होनी चाहिए। कहानी, गजल, उपन्यास हर विधा में कुशल ज्ञान प्रकाश विवेक का नया उपन्यास 'नई दिल्ली एक्सप्रेस' उनकी बहादुरगढ से दिल्ली की आवाजाहियों पर केंद्रित है तथा एक नई दुनिया का उत्खनन है जैसे कि रामदेव सिंह का 'टिकट प्लीज' रेल दुनिया का एक दस्तावेजी उपन्यास बन गया है। अलका सरावगी का उपन्यास एक सच्ची झूठी गाथा इंटरनेट की दुनिया की गप्पुबाजी का एक रोमांचक उदाहरण है।

पौराणिक मिथकीय संदर्भों में मृदुला सिन्हा का उपन्यास 'अहिल्या उवाच' पठनीय बन पड़ा है तो प्रायः मिथकीय पृष्ठभूमि को ही उपन्यासों में पल्लवित करने वाले नरेंद्र कोहली ने इस लीक से अलग हट कर उपन्यास लिखा है 'सागर मंथन' जो एक सांस में पढ़ा जा सकता है। लोग कह रहे हैं कि प्रायः वे पुराआख्यानों की लीक पर ही चलते रहे हैं पर कायदे से उपन्यास के सारे गुणसूत्र इसी में समाहित हैं। गोविंद मिश्र के उपन्यास 'खिलाफत' व गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' ने पाठकों में विशेष उत्साह पैदा किया है। मधु कांकरिया के उपन्यास 'हम यहां थे' ने साल के दौरान खासी चर्चा हासिल की है। उषा किरण खान का नया उपन्यास 'गई झुलनी टूट' और हृदयेश का उपन्यास 'स्वस्थ अस्वस्थ लोग' भी चर्चा में हैं। इसी साल 'ये इश्क नहीं आसां' (शैलेंद्र सागर), 'जो दिखता नहीं' (राजेंद्र दानी) व 'नए समय का कोरस' (रजनी गुप्त) उपन्यास भी आए हैं। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'दूसरी जन्नत' इसी

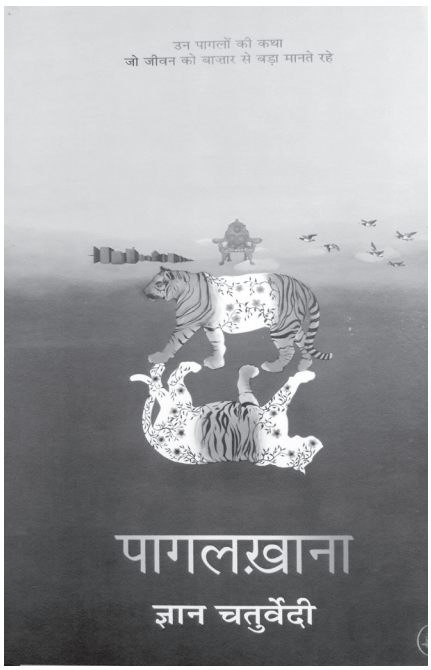

साल आया तो दयानंद पांडेय की 'मैत्रेयी की मुश्किलें' भी पिछले दिनों प्रकाशित हुआ। राजेंद्र लहरिया ने 'इस साल सियासत' उपन्यास दिया तो प्रमोद त्रिवेदी का उपन्यास 'पुतलों की बस्ती में' हाल ही में आया है। रेलवे में टीटीई रहे रामदेव सिंह ने अपने विरल अनुभवों को अपने पहले उपन्यास 'टिकट प्लीज' में औपन्यासिक रूप दिया है। क्या संवाद क्या किस्सागोई सभी दृष्टियों से परिपूर्ण एक नए अनुभव संसार में ले जाने वाली कृति है यह। दामोदर खडसे का उपन्यास 'खिड़कियां' भी उपन्यासों में अनुभवों का एक नया गवाक्ष खोलता है। शैलेश कुमार मिश्र का उपन्यास 'कण्वा की बेटी' शकुंतला पर आधारित उपन्यास है जिसकी भाषा खास तौर अपनी संस्कृतनिष्ठता एवं सुपरिचित किस्सागोई

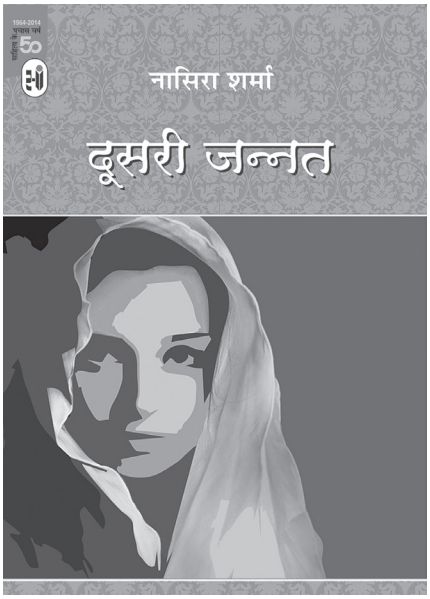

को सलीके से प्रस्तुत करने के कारण उल्लेखनीय है। युवा लेखकों में विमलेश त्रिपाठी का उपन्यास 'हमन है इश्क मस्ताना' सोशल मीडिया के चैट की अभ्यस्त युवा पीढ़ी का आख्यान है जिसने संबंधों को विश्वसनीयता को खासा क्षति पहुंचाई है। नए लेखकों में दिव्यप्रकाश दुबे का 'अक्तूबर जंक्शन' नए कथ्य का परिचायक है तो सरिता शौकीन का उपन्यास 'सुनहरी सांझ' एक उपेक्षित लड़की की मार्मिक दास्तान है। नई आमद के बावजूद सरिता में संवेदना को चीह्नने की शक्ति है। रूपसिंह चंदेल ने उपन्यास 'बस्ती बरहानपुर' व दामोदर खडसे ने 'भगदड़' व रमेश दवे ने 'वह पत्रकार लड़की' के जरिए हिंदी की औपन्यासिक दुनिया को और रोशन किया है।

पर जिस विदग्ध समय में हम रह रहे हैं, उसका कोई गहरा विजनरी आख्यान इधर के

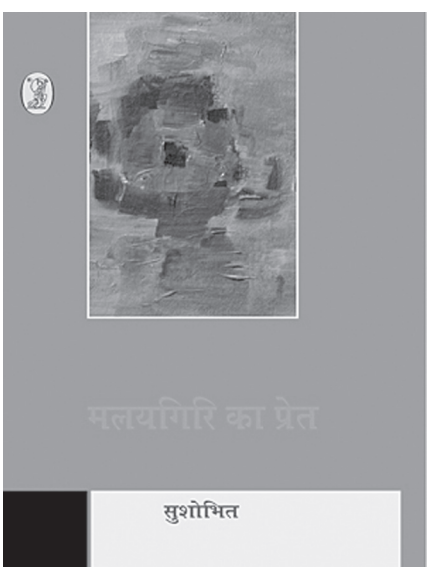

उपन्यासों में नहीं परिलक्षित होता। सो कहना होगा कि साल दर साल आते उपन्यास भी किस्सागोई की गतानुगतिक पटरी पर चलने को अभ्यस्त हो चले हैं।

किस्सा कहानी

साल 2018 में कहानियों की दुनिया को जीवंत रखने वालों में शशिभूषण द्विवेदी, प्रेम भारद्वाज व संजय सहाय का नाम जाना-पहचाना है। इनके कहानी संग्रह क्रमशः 'कहीं कुछ नहीं', 'फोटो अंकल' व 'मुलाकात' विशेष चर्चा में रहे हैं। पर इस साल की एक बड़ी घटना है कवि कुंवर नारायण के दूसरे कहानी संग्रह 'बेचैन पत्तों का कोरस' का प्रकाशन। आकारों के आसपास की कहानियों की ही तरह इस संग्रह की कहानियां भी कुंवर जी की आख्यान व चरित्र चित्रण की अनूठी शैली की याद दिलाती हैं तथा इन कहानियों के पीछे चले सिनेमाई विजुअल्स की तसदीक करती हैं। शीला रोहेकर के कहानी संग्रह 'चौथी दीवार' के साथ कुंदन सिंह 'परिहार', जितेंद्र भाटिया, रामजन्म पाठक व राजेंद्र दानी के संग्रह भी इसी साल आए हैं।

अपनी कहानियों के लिए ख्यात पंजाबी लेखिका अजीत कौर का कहानी संग्रह 'फालतू औरत' भी हिंदी की दुनिया को कुछ और समृद्ध करता है। जयश्री राय की कहानियों का संग्रह 'मोहे रंग दो लाल' भी संवेदनशील कहानियों का संग्रह है। वरिष्ठ लेखकों में दूधनाथ सिंह का कहानी संग्रह 'जलमुर्गियों का शिकार' व ममता कालिया का संग्रह 'ठसक' भी इसी साल आया है तो स्वयं प्रकाश का 'नैनसी का धूड़ा' भी। क्षमा शर्मा की कहानियों के संग्रह 'बात अभी खत्म नहीं हुई' व सुशीला टाकभोरे के संग्रह 'वह लड़की' की भी पर्याप्त चर्चा हुई है। कवयित्री अंजु शर्मा ने पिछले दिनों कहानी की दुनिया में अपने पहले संग्रह 'एक नींद हजार सपने' से दस्तक दी है। 2018 में आया उनका यह संग्रह उन्हें एक कहानीकार की मुकम्मल पहचान देता है।

गीत-नवगीत और गजल

लगातार बेसुरे होते इस समय में इस साल गीत विधा में कुछ अच्छी कृतियां आईं। यश मालवीय गीत के सशक्त हस्ताक्षर के रुप में उभरे हैं तथा नवगीत को सामयिक संदर्भों से जोड़ने में सफलता पाई है। इस साल आया 'मैं वक्त का हूं' लिपिक नवगीत का एक मानक संग्रह बन पड़ा है तथा गीतों में कथ्य के जिस नुकीले तेवर का अभाव दिखता है, यश के गीतों में वह सघनता से मौजूद है। यश ने कोरी तुकबंदी नहीं साधी, गीतों में जीवन साधा है, समय को साधा है, आज की सियासत के पेंचोखम को साधा है और उस विरासत की बागडोर साधी है जिसे अगली पीढ़ी को देकर वे इस दुनिया से कभी विदा होंगे। इन गीतों में 'भाषा का वैभव सारा', 'वक्त का मैं लिपिक', 'चुप चुप हैं जल जंगल जमीन', 'मैं तुम्हारा शब्द हूं', 'सावन के झूले उदास हैं', 'बावड़ी का जल', 'समय की मार सह लेना', 'साझा तहजीब हमारी है', 'तवे पर फूलती रोटी', 'एक करघा जिंदगी का', 'अंजुरी भर कुंआ' मुझे आज के समूचे गीत परिदृश्य में कुछ अलग से दिखते हैं। इनमें नवगीत की बाब्डहेयर स्टाइल कम, संवेदना को पूरी तरह सींचने वाली नमी मौजूद है।

विजय राठौर का गीत संग्रह 'संबंधों में चीनी कम है' गीत रचना की सौष्ठवता का परिचायक है तो रविशंकर मिश्र ने 'संदर्भों से कट कर' शीर्षक संग्रह के प्रकाशन के साथ गीत के दुर्ग में एक बड़ी दस्तक

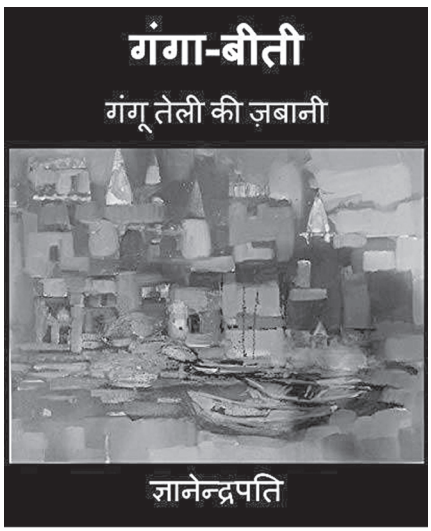

दी है। श्लेष गौतम ने अपने पिता की ही तरह गीतों के पथ पर चलते हुए इस साल 'आदमकद बौने' संग्रह दिया है । सर्वेश त्रिपाठी के गीतों का संग्रह पनघट गीतों की पारंपरिक लय और छंद की याद दिलाता है तथा अपनी पारंपरिकता में ही अपने समय को समेटता है। प्रदीप शुक्ल का नवगीत संग्रह 'गांव देखता टुकुर टुकुर' नवगीतों में संवेदना और छांदिक प्रवाह का तो उदाहरण है ही, समसामयिक परिदृश्य को भी सलीके से गीतों में विन्यस्त करता है।

गजल का क्षेत्र इन दिनों बहुत उर्वर है। नए लोग गजलों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। युवाओं में गजलों के प्रति क्रेज बढ़ा है। इस साल गुलजार की 'पाजी नज्में' इस साल खासा चर्चा में रही। कोलकता के नूर मोहम्मद नूर शायरी में एक जाना-पहचाना नाम है। उनका संग्रह 'सबका शायर' गजलों की दिशा में उनका अगला कदम कहा जा सकता है। 'सच का तो मुख बंद है' से विजय राठौर ने गजलों में मजबूती से कदम रखा है। विनय मिश्र की गजलों का संग्रह 'तेरा होना तलाशूं' ने भी आश्वस्त किया है। माधव कौशिक ने इधर गजलों के साथ गीत में भी मजबूती से प्रवेश किया है। 'उड़ने को आकाश मिले' उनकी गजलों का नया संग्रह है जिससे उनके छंद सामर्थ्य का पता चलता है तो इरशाद अहमद सिकंदर का संग्रह 'दूसरा इश्क' भी गजल में उनके दखल का सबूत है। वाणी की गजलों की सीरीज में ज्ञानप्रकाश विवेक की गजलों का भी एक चयन 'घाट हजारों इस दरिया के' आया है जिनकी गजलों ने हाल के दशक में लोकप्रियता अर्जित की है। पर गजलों के क्षेत्र में प्रतिमान रचा है सुरेंद्र चतुर्वेदी ने जिनके एक दर्जन भर संग्रह इसी साल प्रकाशित हुए हैं। इधर फिल्मी दुनिया के गीतकारों के संग्रह भी आ रहे हैं। मनोज मुंतशिर का 'मेरी फितरत है मस्ताना', इरशाद कामिल का 'काली औरत का ख्वाब' और पीयूष मिश्रा का 'आरंभ है प्रचंड' ऐसी ही कृतियां हैं। इंदौर के शायर अजीज अंसारी का गजल संग्रह 'हवा जोश में है' अपने अंदाजेबयां में लाजवाब है।

कथेतर गद्य

जैसे जैसे कथेतर गद्य में पाठकों की दिलचस्पी बढ़ी है, इस क्षेत्र में रचना के नए आयाम खुलते दीख पड़ते हैं। गए साल आया 'जीवनपुर हाट जंक्शन' अशोक भौमिक के एक विरल स्मृति आख्यान का परिचायक है तो इस साल ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपने ठीहे बहादुरपुर के आख्यानों को 'कम आवाजों का शहर' में समेटा है। स्मृति के छोटे-छोटे टुकड़े सहेज कर जितेंद्र कुमार सोनी ने 'यादावरी' को पठनीय गद्य में गूंथा है तो रमेशचंद्र शाह की डायरी का पांचवां खंड 'कठिन समय में' उनकी स्मृतिबहुल रचनात्मकता और साहित्यकारों के सान्निध्यों का साक्षी है। 'अब चीज क्या है, हवा क्या है' कृष्ण बलदेव

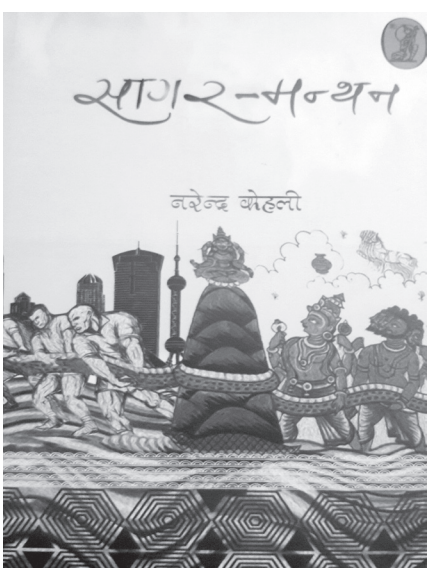

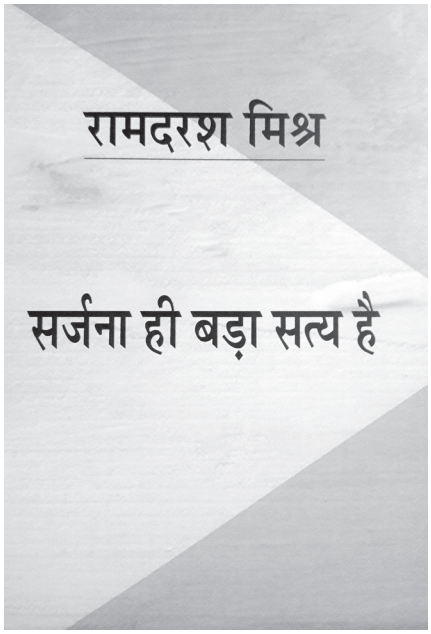

वैद की डायरी का नवीनतम खंड है जिसमें उनका पुराना अंदाजेबयां व उनकी लेखकीय सोहबतों का रोजनामचा पढने को मिलता है। वरिष्ठ लेखक रामदरश मिश्र के संस्मरणों की नई पुस्तक 'सर्जना ही बड़ा सत्य है' में नए-पुराने तमाम लेखकों के संस्मरण हैं। यह अच्छी बात है कि वे 95 की वय में भी उर्वर हैं तथा हर साल उनकी तीन-चार कृतियां अवश्य आती हैं। नए लेखक अविनाश मिश्र की डायरी 'नए शेखर की जीवनी' में समकालीन साहित्य की व्याधियों के साथ हमारे समय की विडंबनाओं व साहित्यिक आत्ममुग्धताओं का सटीक बयान दर्ज हुआ है। 'टेबुल लैंप' के बहाने गीत चतुर्वेदी ने एक अलग आस्वाद पैदा करने वाले गद्य का आविर्भाव किया है। यहां एक कवि के भीतरी उथल-पुथल व संवेदन को चिह्नित करने वाले संकेतक भी हैं जिनसे

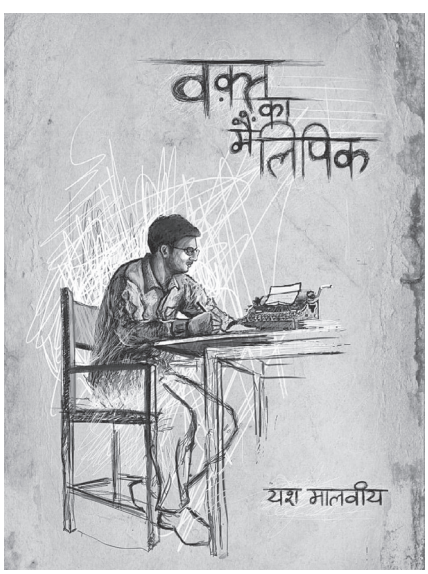

गीत चतुर्वेदी के चिंतनशील कवित्व का परिचय मिलता है। जीवनी विधा में सुनीता बुद्धिराजा ने पंडित जसराज पर जीवतंता से किताब लिख कर एक विराट शख्सियत के उन तमाम कोने अंतरों पर रोशनी डाली है जो अन्यथा अलक्षित रह जाते। मलय ने अपने संगी साथी लेखकों की यादों को 'यादों की अनन्यता' में सहेजा है। कृष्णा सोबती अपने रुचिर गद्य के लिए जानी जाती हैं। गुजिश्ता दिल्ली की यादों को उन्होंने 'मार्फत दिल्ली' में उकेरा है तो शंख घोष की काव्य चिंतन केंद्रित कृतियों 'निःशब्द की तर्जनी' व 'होने का दुख' को हिंदी में उत्पल बनर्जी ने सलीके से अनूदित कर हिंदी पाठकों को यह सुअवसर दिया है कि वे एक महान बांग्ला कवि के सुचिंतित गद्य का आस्वाद ले सकें। ललित निबंध का क्षेत्र गए कई सालों से सूना रहा है जिसे अष्टभुजा शुक्ल ने 'पानी की पटकथा' लिख कर इस सन्नाटे को तोड़ने का यत्न किया है। इस साल गरिमा श्रीवास्तव की डायरी 'देहरी ही देश' की भी काफी चर्चा हुई जो स्त्री की

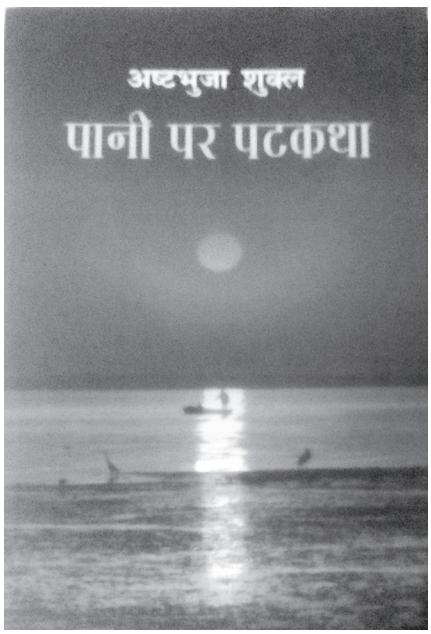

पीड़ा का एक मार्मिक बयान है। यायावरी के गद्य का कलकल प्रवाह राजेश कुमार व्यास की पुस्तक 'नर्मदे हर' में देखने को मिलता है जिसमें 'कोहरे में अयोध्या', 'मोक्ष मिले हरिद्वार' जैसे दशाधिक रम्य यात्रावृत्त समाहित हैं। पर सबसे रोमांचक यायावरी से भरी हैं 'नर्मदे हर' सीरीज की कथाएं जो व्यास के रुचिर गद्य का प्रमाण हैं। 'नीदरलैंड डायरी' लिख कर पुष्पिता अवस्थी ने नीदरलैंड को एक प्रवासी भारतीय की आंखों से समझने का अवसर दिया है। कुबेरदत्त ने आखिरी दिनों में अनेक संस्मरण लिखे थे जिन्हें बलदेव वंशी ने 'वे थे वे हैं' में समेटा है। इसमें महादेवी वर्मा, गढाकोला, रामविलास शर्मा, कैलाश वाजपेयी, कामतानाथ, कमलिनी दत्तस सहित अनेक लोगों पर संस्मरण हैं। यों तो हम लोगों के संस्मरण पढ़ते ही रहते हैं पर कुबेर दत्त के संस्मरणों का फ्लेवर अलग है जिसमें एक चुंबकीय आकर्षण होता है। कथेतर गद्य लिखने में जाबिर हुसैन का कोई सानी नहीं है। रेत उनका सालों से पीछा नहीं छोड़ रहा। इससे पहले उनकी 'चाक पर रेत', 'रेत पर खेमा', 'एक नदी रेतभरी' व 'रेत रेत लहू' आदि कृतियां आ चुकी हैं। 'रेत से आगे' उनकी नई कृति है जिसमें उनके गद्य का रोमांचक परिताप देखने को मिलता है। नियोगी बुक्स से पहली बार हिंदी में आई पुस्तकों में जोहराबाई, उस्ताद बिस्मिल्लाह खान, एम.एफ हुसैन एवं ध्रुपद एवं डागर घराने पर प्रकाशित कृतियां क्लासिक महत्व की हैं।

आलोचना- निबंध

आलोचना के क्षेत्र में सुव्यवस्थित काम कम देखने में आए। हां नामवर सिंह जी की कई पुस्तकें अवश्य प्रकाश में आईं। अरसे उनकी आलोचना को संग्रहीत कर आशीष त्रिपाठी ने उनकी कुछ और पुस्तकों का प्रकाशन संभव कराया है जिनमें 'आलोचना और संवाद', 'पूर्वरंग' प्रमुख है। रामविलास शर्मा पर नामवर सिंह के प्रातिनिधिक आलोचनात्मक निबंधों एवं कुछ अन्य निबंधों का एक चयन रामविलास शर्मा का संपादन ज्ञानेंद्रकुमार संतोष ने किया है। इसमें केवल 'जलती मशाल' से लेकर 'इतिहास की शव-साधना' दोनों बहुचर्चित एवं विवादित लेख शामिल हैं तथा छायावाद और डॉ. रामविलास शर्मा व परंपरा और मूल्यांकन के मार्क्सवादी पक्ष सहित महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेंदु, गोदान, मित्र संवाद पर आधारित निबंध सम्मिलित हैं। उनके भूले बिसरे व्याख्यानों और लेखों का एक और संग्रह 'द्वाभा' भी आया है जिसका संचयन व संपादन नामवर सिंह के सुपुत्र विजय प्रकाश सिंह ने किया है। राजेश जोशी एक कवि के अलावा गहरे चिंतक व आलोचक भी हैं। पहली बार उन्होंने एक ऐसी थीम पर पुस्तक लिखी जिस पर अभी तक स्वतंत्र रूप से लिखने का ख्याल किसी को न था, यों शहर पर या महानगरीय अनुभूतियों को लेकर कविता में अध्ययन होता रहा है। उच्च अध्ययन संस्था शिमला में रहकर व्यवस्थित अध्ययन के आधार पर राजेश जोशी ने 'कविता का शहर' लिखकर कविता और शहर के सनातन रिश्ते का बखान किया है तथा उन व्याधियों का भी जिनके कारण शहरों से मानवीय संवेदनाएं गायब हो रही हैं।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के आलोचनात्मक निबंधों की एक पुस्तक साहित्य का स्वधर्म नाम से प्रकाशित हुई है जिसमें भाषा, साहित्य और साहित्यकार, भक्ति साहित्य, सूर, तुलसी, मीरा, छायावाद, कुंवर नारायण, सीताकांत महापात्र, जवाहरलाल नेहरू, लोहिया एवं गौतम बुद्ध आदि

पर केंद्रित निबंध शामिल हैं। 'मीडिया संस्कृति समय' लेखक-पत्रकार कृपाशंकर चौबे के मीडिया संबंधित लेखों और साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। पुस्तकों की भीड़ में यह संग्रह ध्यान खींचता है। रामविलास शर्मा पर ही अनेक आयामों से विचार करने वाली जाने माने आलोचक एवं स्तंभकार रविभूषण की कृति रामविलास शर्मा भी हिंदी की वाद विवाद संवाद की धारा में अवश्य उल्लेखनीय मानी जाएगी। नब्बे का दशक एवं उसके बाद के भारत में भूमंडलीकरण के प्रभावों से जो एक नई उदारवादी दुनिया बनी उसके प्रभावों के आलोक में रविभूषण की 'वैकल्पिक भारत की तलाश' पुस्तक आई है जिसमें दादाभाई नौरोजी, आजादी के पचास वर्ष, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, गैट, विश्व व्यापार संगठन व अमरीका, राष्ट्रवाद और अभिव्यक्ति की आजादी आदि विषयों पर लंबे आलेख शामिल हैं जो कभी पहल, आलोचना, पल प्रतिपल, पक्षधर व संवेद आदि में छप कर चर्चा का केंद्र बने हैं। चिंतन व आलोचना की व्यापक परिधि में शुमार की जाने वाली पुस्तक 'नेहरूः मिथक और सत्य' जाने माने पत्रकार पीयूष बबेले ने लिखी है जिसमें राष्ट्र, जम्मू-कश्मीर, सांप्रदायिकता, राष्ट्रनिर्माण आदि के संदर्भ में नेहरू के योगदान को मूल्यांकित किया गया है। यह नेहरू को लेकर फैलाई गई मिथकीय धुंध का प्रक्षालन भी है। ज्योतिष जोशी की पुस्तक 'समय और साहित्य' में विचार और आलोचना के कई संजीदा विषयों को विवेचित किया गया है तथा कृति संवाद के अंतर्गत अनेक साहित्यिक कृतियों पर विचार किया गया है। मुक्तिबोध की शती के परिप्रेक्ष्य में उन पर लेखकों का ध्यान गया है तथा उन्हें मूल्यांकित करते हुए आई अमिताभ राय की पुस्तक 'सभ्यता की यात्रा : अंधेरे में' मुक्तिबोध व विनय विश्वास की कृति 'ऐंद्रिकता और मुक्तिबोध' मुक्तिबोध के जीवन व साहित्यिक संघर्ष को वस्तुनिष्ठ ढंग से मूल्यांकित करती है। इस साल आई अन्य आलोचना की पुस्तकों में 'मुक्तिसमर में शब्द'(ओम भारती), 'अंतर्कथाओं के आईने में' उपन्यास(राहुल सिंह), 'आलोचक के नोट्स' (गणेश पांडेय), 'हिंदी आलोचनाः दृष्टि और प्रवृत्तियां'(मनोज पांडेय), 'कंपनी राज और हिंदी'(शीतांशु) भी उल्लेखनीय हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने कुंवर नारायण के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सर्वोत्तम आलोचनाओं का चयन 'अन्वय' एवं 'अन्विति' शीर्षक से संपादित किया है जो किसी भी हिंदी लेखक पर ऐसा पहला महत्वाकांक्षी उपक्रम है। इस उपक्रम में देश-विदेश के सौ लेखक शामिल हैं जिन्होंने कुंवर नारायण के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के

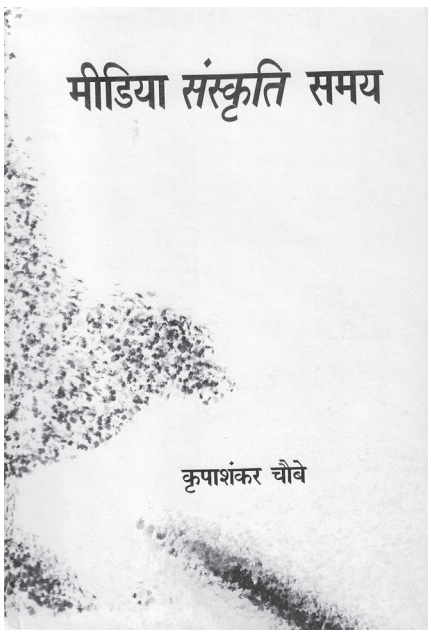

बहुआयामी पहलुओं को अपनी समीक्षा आलोचना में उदघाटित किया है। आलोचना में प्रभाकर श्रोत्रिय की कृति 'कथा का सौंदर्यशास्त्र' कथा विषयक उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचायक है। तो रमेश कुंतल मेघ की दो कृतियां आलोचिंतना को होने दो केंद्र अपसारी व आपकी खातिर मुनासिब कार्रवाइयां मेघ के सुचिंतित आलोचन का साक्ष्य हैं। 'दलित कविता : समकालीन परिदृश्य' लिखकर जयप्रकाश कर्दम ने दलित कविता की नींव को और पुख्ता किया है। हिंदी में सवैया साहित्य लक्ष्मीशंकर मिश्र निशंक का सवैया काव्य पर एक सुचिंतित अनुशीलन है जो सवैया लेखन के उद्भव व विकास की विस्तृत बानगी पेश करता है।

विविध लेखन

महाप्राण निराला पर गंगाप्रसाद पांडेय के संस्मरणों की

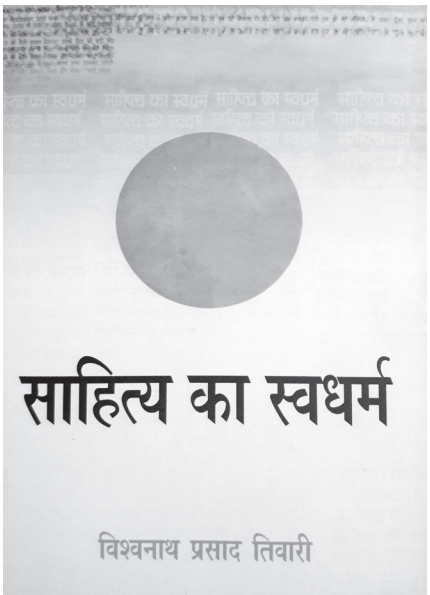

बेजोड़ पुस्तक 'महाप्राण निराला' का रजा फाउंडेशन द्वारा पुनर्प्रकाशन एक अनूठी घटना है। कितने दुर्लभ संस्मरण उन्होंने यहां सहेजे हैं। रजा पुस्तक माला में ही मुक्तिबोध के उद्धरण, गांधी के प्रार्थना प्रवचन के दो खंड, प्रभुदयाल मीतल संपादित 'ब्रज ऋतुसंहार', राधावल्लभ त्रिपाठी अनूदित 'अमरुकशतक' बेहतरीन कृतियां हैं। कृष्णा सोबती से बातचीत की एक बेहतरीन पुस्तक 'लेखक का जनतंत्र' नाम से आई है। यह बा-बापू की डेढ़ सौवीं जयंती का वर्ष है। गांधी और कस्तूरबा पर प्रभूत साहित्य प्रकाशित हुए। गिरीश्वर मिश्र के निबंधों का संग्रह 'समझि बूझि बन चरना' भी उनके चिंतन की गवाही देता है। भारतीय ज्ञानपीठ से 'गांधी दृष्टि युवा रचनात्मकता के आयाम' पुस्तक प्रो. मनोज कुमार तथा डॉ. अमित कुमार विश्वास के संपादन में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक आज के समाज को नई दिशा देने में मददगार

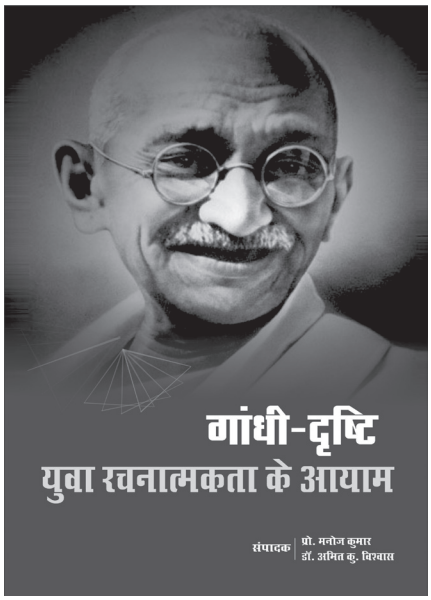

साबित होगी। इतना प्रभूत लेखन हर साल सामने आता है कि शब्दों के घटाटोप में संवेदना जैसे रद्दी के भाव तुल जाती है। ऐसे में कभी कभी कहने का मन होता है, बही लिख-लिख के क्या होगा, वही किस्सा पुराना है। पर दिनों दिन शब्दों का कोलाहल इतना बढ़ता जा रहा है और बुद्धिजीवियों, कवियों, लेखकों के यहां शब्दों की इतनी खपत है कि संशय होता है कि कहीं शब्दों का अवमूल्यन तो नहीं हो रहा। पर जैसा कि होता है, साहित्य की महोदधि में शब्दों का एक अटूट प्रवाह है जिसमें सीप, शंख, घोंघे सभी प्रवाहित हैं तथापि, सार्थक शब्दों को शब्दों के अपार अंबार में खोजना होता है।

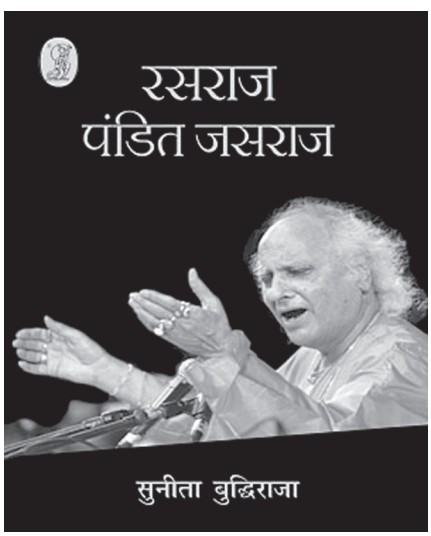

हिंदी पत्रिकाएं

हिंदी पत्रिकाओं का संसार बहुत विशद है। अखबारों में साहित्य की जगह सिकुड़ते जाने से लोगों ने लघु पत्रिकाओं की ओर रुख किया है। समय-समय पर पत्रिकाओं ने विभिन्न मुद्दों पर विशेषांक निकाले हैं। लमही ने व्यंग्य विशेषांक प्रकाशित कर व्यंग्य विधा को महत्ता दी तो इस साल कथाकार श्रीपत राय व ज्ञान चतुर्वेदी पर शानदार विशेषांकों का प्रकाशन किया है। 'साहित्य अमृत', 'गगनांचल' व कई अन्य पत्रिकाओं ने विश्व हिंदी सम्मेलन के मौके पर हिंदी विशेषांक निकाल कर अपनी भाषा को प्रणति निवेदित की। 'साहित्य अमृत' ने लोक संस्कृति पर भी एक वृहद अंक का प्रकाशन किया। भारतीय भाषाओं की समाहित पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' का ओड़िया साहित्य विशेषांक बहुत समावेशी रहा है। पाखी ने कई विशेष लेखकों पर विशिष्ट सामग्री प्रकाशित कर लेखकों के महत्व को स्वीकारा है। बनास जन ने कथेतर गद्य व मार्क्सवाद के नए पहलू पर अंक प्रकाशित किए व केदारनाथ सिंह पर अंक निकाल कर उनकी स्मृति को प्रणति निवेदित की तो हिंदी अकादमी दिल्ली की पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' ने क्रमशः चंद्रकांत देवताले, कुंवर नारायण व केदारनाथ सिंह पर अंक निकाल कर विष्णु खरे की प्रतिज्ञा को साकार रूप दिया है। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की पत्रिका 'बहुवचन' ने 'आज की कहानी' और 'विश्व हिंदी सम्मेलन' पर अंक निकाले वहीं मराठी साहित्य विशेषांक की प्रस्तुति साहित्यिक दृष्टि से खासी महत्वपूर्ण है। विश्वविद्यालय की दूसरी पत्रिका 'पुस्तक-वार्ता' की निरंतरता बनी हुई है। आश्चर्यजनक ढंग से साहित्य अकादेमी की अंग्रेजी पत्रिका 'इंडियन लिटरेचर' ने कुंवर नारायण पर गए साल दो-दो विशिष्ट अंक निकाले तथा उन पर अनेक सुविचारित लेखों के साथ उनकी कविताएं भी प्रभूत संख्या में अनूदित कर छापीं। साहित्य विकल्पक, इलाहाबाद ने दूधनाथ सिंह पर विशद अंक निकाल कर साहित्य में उनके गौरवमय योगदान को रेखांकित किया है। भारतीय ज्ञानपीठ की पत्रिका 'नया ज्ञानोदय' ने समय समय पर अनेक लेखकों पर विशेष सामग्री दी है। 'आधारशिला' ने 2018 में कथाकार पानू खोलिया के कथासंसार पर अपना अंक एकाग्र किया तो मॉरीशस में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर मॉरीशस का हिंदी साहित्य विषय पर अपना अंक केंद्रित कर वहां के लेखकों की कहानियां, नाटक व कविताएं प्रकाशित कीं तथा मॉरीशस के लेखकों पर मूल्यांकनपरक लेखों को समाविष्ट किया। व्यावसायिक मासिक पत्रिका 'कादंबिनी' का हर अंक यों तो किसी न किसी विषय पर केंद्रित हुआ करता है पर साल 2018 के साहित्य पर केंद्रित अंक खासा चर्चा में रहा है। 'सामयिक सरस्वती' ने गए साल आचार्य रामचंद्र शुक्ल पर एक अंक केंद्रित किया तो थर्ड जेंडर पर भी एक विशेषांक केंद्रित कर इस दुनिया पर लिखे जा रहे साहित्य का मूल्यांकन सामने रखा।

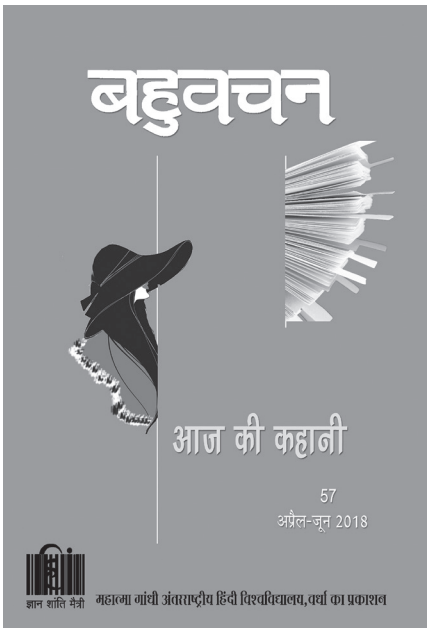

उल्लेखनीय है कि इस साल साहित्य अकादेमी सम्मान से पुरस्कृत लेखिका चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'नाला सोपारा' भी थर्ड जेंडर के जीवन संसार पर ही केंद्रित है। 'पुस्तक वार्ता' ने भी अपने विभिन्न अंकों में रेणु सहित महत्वपूर्ण लेखकों पर विशेष सामग्री का प्रकाशन किया। काशी से प्रकाशित 'समकालीन स्पंदन' ने बाल विशेषांक निकाल कर बाल साहित्य सृजन के महत्व को मान दिया। केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा 'गवेषणा' सहित कई पत्रिकाएं प्रकाशित कर रहा है जिनके कई महत्वपूर्ण अंक 2018 में प्रकाशित हुए हैं। सूचना विभाग लखनऊ की पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' ने इस साल विशद ब्रज विशेषांक एवं काशी विशेषांक का प्रकाशन किया है, साथ ही कबीर पर विशेष सामग्री प्रकाशित की है। कोलकाता से प्रकाशित पत्रिका 'गंभीर समाचार' ने साल की शुरुआत में रचना विशेषांक के साथ साल का समापन पत्रकारिता विशेषांक से किया। 'इंडिया टुडे' की साहित्य वार्षिकी भी पिछले साल चर्चा में रही है। हिंदी की कथा पत्रिकाओं 'हंस' व 'कथादेश' ने भी अपने कई अंकों में विशिष्ट लेखकों पर महत्वपूर्ण आलेखों का प्रकाशन किया। 'मड़ई' का साल 2018 का अंक हर साल की भांति लोक पर केंद्रित रहा। भोपाल से निकलने वाली पत्रिका 'गर्भनाल' का तो हर अंक हिंदी की हितचिंता से जुड़ा होता है। अपने छोटे से आयाम में प्रवासी लेखकों के रचना संसार को समेटने वाली यह पत्रिका शब्द चित्र, विचार, बातचीत, डायरी, रम्य रचना, कहानी, कविता आदि स्तंभों से पठनीय और प्रासंगिक बनी हुई है। 'प्रभात खबर', 'जनसत्ता' और 'लोकमत समाचार' के वार्षिक अंक सदैव की भांति विचारोत्तेजक व समावेशी रहे हैं। 'समय मीमांसा' का कुंवर नारायण पर आया विशेष अंक गए साल चर्चा में रहा।

कविता

समय के दस्तावेज को समेटती 'देखणी'

दामोदर खड़से

साहित्यकार

संपर्क :
बी-503-504, हाई ब्लिस,
कैलाश जीवन के पास,
धायरी, पुणे-411041
(महाराष्ट्र)
मो. 9850088496

भालचंद्र नेमाड़े कविताएं भी रचते हैं, यह बात कम से कम हिंदी जगत के लिए अपरिचित ही रह गई थी परंतु, अब उनका कविता-संग्रह 'देखणी' हिंदी में प्रकाशित हुआ है। कविताएं नेमाड़े ने कम लिखी हैं-गद्य अधिक लिखा है। 1958 से 1968 और 1987 से 1991 के बीच लिखी गई कविताएं इस संग्रह में शामिल की गई हैं। जहां तक भालचंद्र नेमाड़े की भाषा का सवाल है, वह पहाड़ी नदी की तरह उतार-चढ़ावों पर झूमते हुए कल-कल करती हुई प्रवाहमान होती है। उनकी कविता में भी वह भाषा उसी तरह गांव-कस्बों, नगरों-महानगरों की भाषा बहती है। जीवन के तमाम अनुभव ठेठ देशी शब्द पाकर बहुत ठोस बन, कविता में उभरते हैं। कविताएं कभी सीधी-सपाट तो कभी गूढ़-गंभीर हो जाती हैं। गोवा निवास के दौरान 'देखणी' लोकनृत्य के प्यार के चलते उन्होंने इस संग्रह का नामकरण किया है।

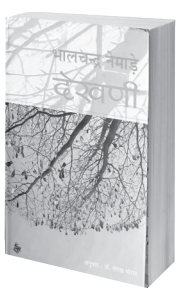

पुस्तक : देखणी
कवि : भालचंद्र नेमाड़े
हिंदी अनुवाद : डॉ. गोरख थोरात
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 80
मूल्य : ₹ 250

भालचंद्र नेमाड़े को सामान्यतः उपन्यासकार के रूप में जाना जाता है। परंतु, उन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार आलोचना के लिए मिला। बाद में, 'हिंदू' उपन्यास के लिए उन्हें ज्ञानपीठ-सम्मान से विभूषित किया गया। वे कविताएं भी रचते हैं, यह बात कम से कम हिंदी जगत के लिए अपरिचित ही रह गई थी परंतु, अब उनका कविता-संग्रह 'देखणी' हिंदी में प्रकाशित हुआ है। कविताएं नेमाड़े ने कम लिखी हैं-गद्य अधिक लिखा है। 1958 से 1968 और 1987 से 1991 के बीच लिखी गई कविताएं इस संग्रह में शामिल की गई हैं। भालचंद्र नेमाड़े का मानना है कि 'अवचेतन में भाषा की अंदरूनी पर्तों के नीचे ही कविताओं की ध्वनि-पर्तों का उद्गम होता है। यदि हम इस स्थिति में अपनी संपूर्ण चेतना को भाषा के लिए न्योछावर न कर पाए तो कविता का द्रव्य हवा हो जाना है।' जहां तक भालचंद्र नेमाड़े की भाषा का सवाल है, वह पहाड़ी नदी की तरह उतार-चढ़ावों पर झूमते हुए कल-कल करती हुई प्रवाहमान होती है। उनकी कविता में भी वह भाषा उसी तरह गांव-कस्बों, नगरों-महानगरों की भाषा बहती है। जीवन के तमाम अनुभव ठेठ देशी शब्द पाकर बहुत ठोस बन, कविता में उभरते हैं। कविताएं कभी सीधी-सपाट तो कभी गूढ़-गंभीर हो जाती हैं। गोवा निवास के दौरान 'देखणी' लोकनृत्य के प्यार के चलते उन्होंने इस संग्रह का नामकरण किया है।

भालचंद्र नेमाड़े का शब्द-संसार अपनी अलग पहचान रखता है। 'कुलीन व्यथाएं' एक कविता है, जिसमें वे व्यथाओं से तमाम प्रश्न करते हैं। कई बार शब्द-भाषा सरल होने के बावजूद उसके भीतर का निहितार्थ अनेक विरोधाभासों को व्यंगात्मक अभिव्यक्ति दे जाता है। लेकिन, ठहर कर सोचने पर कविता को पंक्तियां, रचनाकार के अंतर को धीरे-धीरे उघाड़ती हैं-'कैसे बनाती हो रंगोली, तुम कुलीन व्यथाओं! कैसे लीपती हो आंगन का कोना-कोना कि खिल उठे ... बाहर-भीतर आते-जाते कैसे गुनगुनाती हो आरतियां/गूंथकर अर्थ-धुंधले शब्दों के सुरों की वेणी में- वह अर्थ मैं टटोलना चाहता हूं/ तब दीवार से सटकर खड़े मेरे/सिर के ऊपर पीपल की हर डाल/शोर मचा रहे कौओं की कालिख से लदी होती है।'

संघर्ष और कंटीले रास्तों का बयान 'राह' कविता में है। जीवन की चुनौतियों से टकराते हुए कई बार यात्राएं जख्मी हो जाती हैं। डॉ. नेमाड़े ने ऐसी स्थितियों का बयान बहुत सटीक किया है। वे जिन प्रतीकों को साधते हैं, वे सर्वथा नए आयामों के साथ होते हैं। शायद ही, कभी 'मोरपंख पलकों में धूल का' जैसी अभिव्यक्ति कहीं हुई हो। मोरपंख तो प्रसन्न मन का सतरंगी नर्तन होता है, पर वही मोरपंख, पलकों में धूल की तरह चुभता है। कभी-कभी सपने जब पराए हो जाते हैं, तब खुली आंखों में धुल की तरह आंखों को लहुलूहान कर जाते हैं। राहें दूभर हो जाती हैं लक्ष्य ओझल लगने लगता है और 'राह' कविता में कवि कहते हैं 'हमेशा रहा हूं पुकारता सुख को/घूमा ऐसे लिए फफोले पैरों में/ यहीं ढह गया ऐसी सुनी बेला में/दिशाएं भी गईं काटकर चक्कर मेरा...।'

भालचंद्र नेमाड़े की कविता में बयान का एक आवेगपूर्ण निर्झर है। कई बार शब्दों की सीमाएं ठिठका जाती है, पर आवेग नहीं थमता। बिंब-विधान और शिल्प-शैली तमाम मिथकों पर एक नया वर्क चढ़ाते हुए कवि को

आशय के इतने आयामों का उद्घाटन करते हैं कि पाठक एक कोलाज से गुजरते हुए स्वयं ही अपनी कविता की यात्रा पर चल निकलने-सा अनुभव करता है। हर वाक्य में ऐसे घुमाव, ठहराव और बहाव है कि इस उतार-चढ़ाव की सघनता को बहुत गहराई से अनुभव किया जा सकता है। फिर अचानक कोई अर्धवाक्य पूरी कविता को नई झालर पहना जाता है- 'बाहुओं का लोहा पीनेवाली सती गौरी/उसकी अब यों भयाकुल पथरीली नजर/सब कुछ भूल जाना/ इस पूरे जन्मांतर की लिपि को ही भूल जाना/ शिलालेख की/कितना अद्भुत... जिंदगी जैसा।' 'शिल्पसुंदरी' कविता में डॉ. नेमाड़े ने जो शब्दावली अपनाई है, वह सर्वथा अछूती है। किसी शिल्प के मिथक की 'पथराई आंखें', 'मध्ययुग की बेहोश रातें', 'नुकीली अंगूठियां', 'अभ्यर्थना करती रेतीली तेज हवाएं' जैसी अभिव्यक्तियां अपने आप में कविता की तरह दमकने लगती हैं। यही बात 'दीवट' सोया दरख्त' सांत्वना में देखी जा सकती है।

'देखणी' कविता संग्रह में दुःख का महागान तो है, पर उसे कहने की शैली, रूप, अनुभूति और प्रकटन का बिलकुल अलग अंदाज। जीवन के तमाम पहलुओं में ध्यान लगा कर बैठे दुख को वे चुनौती देते हैं। उनका बयान कभी पुराना नहीं लगता। उनकी अभिव्यक्ति, लगता है अनुभूतियों में डूबकर नहायी है। धारदार भाषा में लिपटी अनुभूति सरपट अपनी राह निकालती है और पुराने पड़े मिथक हड़बड़ाकर जागते हैं और भालचंद्र नेमाड़े की अभिव्यक्ति में तेज बह रही कविताओं में अपने अर्थ और अस्तित्व की तलाश करते हैं। 'मेलडी' उनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसमें उनका बयान है- 'फिर भी... फिर भी... संवाद सुख से छलक उठे। यों पगनेवाले घमंड थे ही नहीं कभी पहले हमारे/ यहां भी नहीं। इस घुंघची भर वेदना के झरोखे से/दुख के समारोह देखे, गर्भिणियों के सीने पर हार देखे/यही अपूर्णांक का दर्शन...।' 'जननि' कविता में कवि मनुष्य की जन्मकथा को नए रूप में बयान करते हैं- 'देखे रंग कोख के भीतर पाई गर्माहट गोद की/...गर्भिणी के भीतर ज्यों नन्हीं सी परी/गगरी के जल पर छलके, चंद्रमा का बिंब...।' और एकाधिकार की भावना का काव्यमय प्रकटन भी अंत में... 'चुबक् चुबुक् नहीं चाहिए भीड़ सिवा मेरे तुम्हारे स्तन मेरे ही बस पान के लिए।' इसी तरह 'वजूद' कविता वे स्व, आत्मभिमान को सुरक्षित रखने की दुहाई देते हैं।

'हम तमाम' अलग शैली और नए कथ्य की अभिव्यक्ति है। ऐसे वेगवान और जीवन की निकटता लिए अनुभवों को बेहिचक बयान

'देखणी' कविता संग्रह में दुख का महागान तो है, पर उसे कहने की शैली, रूप, अनुभूति और प्रकटन का बिलकुल अलग अंदाज। जीवन के तमाम पहलुओं में ध्यान लगा कर बैठे दुख को वे चुनौती देते हैं। उनका बयान कभी पुराना नहीं लगता। उनकी अभिव्यक्ति, लगता है अनुभूतियों में डूबकर नहायी है। धारदार भाषा में लिपटी अनुभूति सरपट अपनी राह निकालती है और पुराने पड़े मिथक हड़बड़ाकर जागते हैं और भालचंद्र नेमाड़े की अभिव्यक्ति में तेज बह रही कविताओं में अपने अर्थ और अस्तित्व की तलाश करते हैं।

करते हुए तथाकथित 'असंभ्रात' शब्दों को समेटने में उन्हें परहेज नहीं है। नागरी संस्कृति से दूरी रखनेवाले गंवई शब्दों को कवि ने अपनी कविता के शिल्प के लिए अपनाया है लेकिन इसमें भदेसपन ढूंढने की आवश्यकता नहीं लगती। अपने कथ्य को पूर्णतः अभिव्यक्त करने के लिए जिस तरह की शब्दावली का चयन कवि करता है, वह अपने लक्ष्य को अधिक स्पष्टता सौंपता दिखाई देता है। कवि के शब्दों में, '...बेंच पर कहीं चूतड़भर जगह मिल जाए तो हम तमाम/सब कुछ सीधा, गाड़ी सीधी, पटरी सीधी, हमने लाइब्रेरी में पढ़ा, सब कुछ सीधा-साधा/पंक्तियां कितनी सीधी, एक के नीचे एक पन्ने कितने सीधे, एक के पीछे एक/राजमार्ग का यातायात भी कतार में/थूकने के लिए जरा-सी जगह मिल जाए तो हम तमाम।' इसी तरह 'अनमेल' कविता में तमाम विसंगतियों का विश्लेषण अलग शैली में विस्तार से किया गया है। यह एक प्रयोगात्मक कविता है। व्यंग्य और विसंगति तथा जीवन के अनमेल स्थितियों को समूह में रखकर कविता का ताना-बाना बुना गया है। इसका शिल्प बिलकुल भिन्न है-

'अंतरिक्ष की जंघा पर खुर खोदकर
सुर
भूमि पर ही चलते धूल में रेंगते
घर...'
और
'गाना/माड़/रास्ता/नदी/सीना/जगह।
जुड़ती नहीं हैं एक-दूसरी से ये बातें
स्त्री-पुरुषों की भांति अनुरूप ।'

'सन् 1966' एक लंबा आख्यान है- काव्य-यात्रा है, स्थितियां घटनाओं, व्यवस्था का चालाकियों, शोषणों के दृश्य, जीने के क्रम में विवशता का बयान इस दीर्घ-कविता में बखूबी उभर कर आया है। इस एक कविता के गर्भ से कवि की तमाम अनुभवों को उभरते हुए देखा जा सकता है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' की तरह यह कविता अपने समय, हालात और उत्तरदायी व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए खिन्न मन से कहती है- 'सारे धर्म सारे मूल्य तंबाकू की पिचकारी में थूक दिए...।' 'किसी के लिए बनाया किसी का मकबरा मुस्कुरा उठा शान से...', 'बेकार न हो नाल शिशु का/बड़ा कठिन है समय बाहर...।' और लंबे, निरंतर, अथक बयान के बाद कवि कहते हैं, 'रात रात नहीं होती, दिन दिन नहीं होते/होती है सारी आवाजें बिना निशानों की/बदन के कपड़े कपड़े नहीं होते...।' बिना निशान दिखे आवाजों के दबाव को कवि ने बहुत सूक्ष्मता से उजागर किया है। इसी तरह 'दंगा' 'आत्मालाप', 'ओझा की बही', 'खुदकुशी', 'विस्थापन का गीत', 'कसाई खाना' की कविताओं में विसंगतिपूर्ण समय दास्तान दर्ज है। 'कवि लोग' में कवियों की भीतरी जिजीविषा की व्यंग्यात्मक कड़ियां हैं। 'माता के नाम' और 'दादी' कविताएं ऊपर-ऊपर से रिश्तों को संबोधित कविताएं लगती हैं, पर इसमें भालचंद्र नेमाड़े ने अपने समय के दस्तावेज समेटकर रखे हैं।

कविताओं का अनुवाद के प्रतिशब्दों की कसरत नहीं होती उसमें जब तक गंध की संवेदना न उतरे तब तक कविता की संज्ञा मूल कवि की अभिव्यक्ति को नहीं मिल पाती। इन कविताओं की गहनता, गूढ़ता, कोलाज, गति-आवेग और रंग-रूप को साधकर हिंदी में पिरोने का शिव-धनुष डॉ. गोरख थोरात ने बखूबी उठाया है।

कहानी

संवेदना के नए क्षितिज

चित्रेश

कथाकार

संपर्क :
दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'
ग्राम-पो. जासापारा,
गोसाईगंज
सुलतानपुर-228119
(उ.प्र.)
मो. 9450143544

कमलेश लंबे समय से नगरीय जीवन जी रहे हैं, लेकिन फिर भी ग्राम्य बोध उनके मन-मस्तिष्क में आज तक जीवंत है। इस संग्रह में कुल 33 कहानियां हैं, इनमें अधिकांश कहानियों के कथानक 'गांव' को स्पर्श करते हैं। 8 कहानियां तो पूर्णतया ग्राम्य जीवन के यथार्थ पर टिकी हैं। पुस्तक की शीर्षक कहानी 'आदिकाल' इसका सशक्त प्रतिदर्श है। गांव में सड़क और बिजली पहुंच रही है। शौचालय और कॉलोनियों का निर्माण होने लगा है। मगर यहां जो 'अपनापा' हुआ करता था, उसकी जगह 'ईर्ष्या और द्वेष के भाव खूब पनप रहे हैं। संग्रह की अधिकतर कहानियां मानवीय संवेदना के विभिन्न धरातलों को स्पर्श करने में समर्थ हैं, ग्रामीण परिवेश और निम्न वर्गीय जीवन से जुड़े पात्रों का चित्रण सुंदर बन पड़े हैं।

'आदिकाल व अन्य कहानियां' चर्चित कथाकार कमलेश भट्ट 'कमल' का चौथा कहानी संग्रह है। इससे पूर्व उनका 'नख्लिस्तान' सन् 2002 में छपकर आया था। दोनों संग्रहों के बीच की लंबी अवधि के मसले का जिक्र लेखक ने 'अपनी बात' (अंतराल कथा) में गंभीरता और प्राथमिकता के स्तर पर किया है।

बकौल रचनाकार... 'इस अवसर पर यह कहना अनुचित न होगा कि जिस संवेदना और शिल्प की कहानियां मैं लिखता आया था, कहानी विधा उससे बहुत आगे और दूर चली जा रही थी। मैं उसका पीछा करने की मनःस्थिति में नहीं था। जिसका परिणाम रहा कि कहानी लेखन प्रायः छूटता-सा चला गया...।' 'अंतराल कथा' की साफगोई सिर्फ अपनी बात कहने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह उनकी कहानियों की दुनिया में प्रकल्पित यथार्थ से अलग आंखों देखा सच के रूप में कदम-कदम पर विद्यमान है।

कमलेश लंबे समय से नगरीय जीवन जी रहे हैं, लेकिन फिर भी ग्राम्य बोध उनके मन-मस्तिष्क में आज तक जीवंत है। इस संग्रह में कुल 33 कहानियां हैं, इनमें अधिकांश कहानियों के कथानक 'गांव' को स्पर्श करते हैं। 8 कहानियां तो पूर्णतया ग्राम्य जीवन के यथार्थ पर टिकी हैं। पुस्तक की शीर्षक कहानी 'आदिकाल' इसका सशक्त प्रतिदर्श है। गांव में सड़क और बिजली पहुंच रही है। शौचालय और कॉलोनियों का निर्माण होने लगा है मगर यहां जो 'अपनापा' हुआ करता था, उसकी जगह 'ईर्ष्या और द्वेष के भाव खूब पनप रहे हैं। 'हवश' इस कदर बढ़ रही है कि धनई और पुद्दन जैसी लड़ाइयां आम हो चुकी हैं। धनई की मृत्यु पर उसके बेटे बड़कू की प्रतिक्रिया शून्यता और निर्लिप्तता, दिनायारा जैसे गांवों का उस पुरा पाषाणकाल में पहुंच जाने का संकेत है, जब रिश्तों पर आधारित संवेदना का विकास ही नहीं हुआ था।

'मकड़ जाल' के तीरथ और परबराम (सगे भाई), 'असमाज' के राजनाथ और शकुंतला (पति-पत्नी), 'सजा' के सरजू और फुन्नू (बाबा-नाती) भी आज के समाज में संबंधों को तार-तार करने वाली सच्चाइयां हैं, जो एकबारगी झकझोरकर रख देती हैं। 'चारा' के खुर्राट अधिकारी पी.सी. माथुर निश्चल पहाड़ी युवक हेमचंद के विश्वास का जिस संवेदनहीनता से गला घोटते हैं, वह सभ्यता के मुंह पर तमाचा है। संग्रह में 'ध्रुवीकरण' एक महत्वपूर्ण कहानी है। वास्तव में दलितोद्धार के लिए जो सरकारी योजनाएं चलाई जाती हैं, यह पर्त दर पर्त उसका सच सामने लाती है। इन योजनाओं में ग्रामीण संस्कृति, सामाजिक सोच और गंवई अर्थव्यवस्था के पीछे की जमीनी हकीकत पर केंद्रित अपेक्षित दूरदृष्टि का अभाव होता है लिहाजा यह तात्कालिक लाभ के लिए उस वर्ग के राजनीतिक इस्तेमाल का निमित्त बन कर रह जाती है। अंततः यह पूरी कवायद हास्यास्पद रूप से यथास्थितिवाद को ही प्रबलता देने लगती है। रामचरन जैसा ईमानदार पत्रकार जब इस घपले को सामने लाने

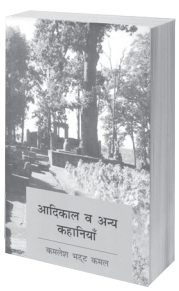

पुस्तक : आदिकाल व अन्य कहानियां
लेखक : कमलेश भट्ट 'कमल'
प्रकाशक : पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली-32
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 296
मूल्य : ₹ 500

का प्रयास करता है तो सत्ता किस सीमा तक क्रूर हो सकती है यही हृदय विदारक सत्य सामने लाना इस कहानी का अभीष्ट है, जिसमें यह सफल है।

कमलेश की कहानियां भाषा, भाव और शिल्प की दृष्टि से अत्यंत सहज है। कहानियों का समाजशास्त्र गवई निम्न एवं शहरी निम्न मध्य वर्ग से संबंधित है। कहानियों में नाटकीयता का अभाव एक खासियत के रूप में विद्यमान रहता है। घटनाओं/स्थितियों के विविध शब्द चित्रों को खास ढंग से संयोजित करके वे ऐसा तथ्यात्मक परिदृश्य निर्मित करने में माहिर हैं, जो पाठक की संवेदना को छू लेता है। 'भूख', 'कौन हैं बाबा रामलाल', 'लाइफ स्टाइल', 'पिंजरो', 'अप्रत्याशित', 'मूलमंत्र', 'हमला', 'बाल बच्चे', 'दुद्धू', और 'कोई नहीं' में यह कला कुछ अधिक ही प्रभावी बन पड़ी है, जिससे कमजोर कथानक के बावजूद भी यह कहानियां जीवंत बन पड़ी हैं।

'सहस्त्रानन' अद्भुत व्यंजनात्मकता, कसाव और कलात्मक बुनावट से विशिष्ट बन पड़ी है। वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हुए आतंकी हमले को केंद्र में रखकर प्रोफेसर अश्वनीकांत और पत्रकार विकास के बीच जो संवाद होता है, उससे जिंदगी के हर क्षेत्र में - अंतरराष्ट्रीय से लेकर स्थानीय स्तर तक पसरते आतंकवाद की पड़ताल की गई है जबकि शांतनु, कामेश्वर और कृष्णकांत के माध्यम से 'हमला' अखबारी दुनिया के छद्म और शोषण का सामने लाती है। वर्णनात्मकता के बावजूद भी इसमें रोचकता की कमी नहीं है। 'काला क्षितिज' में राजनीति के दलदल के कलुषित चित्र हैं। इसमें मुगन्नीलाल, चुलबुल सिंह और किशोरीलाल के रोचक क्रिया-कलापों के जरिए सत्ता के लिए राजनीतिज्ञों की अंदरूनी उठापटक और मौकापरस्ती को सामने लाया गया है। पूरी कथा संरचना के ऊपर हल्के व्यंग्य से कहानी पठनीय बन पड़ी है। कुसंस्कार और छल-छद्म से भरे रौनक सिंह की एम.एल.ए. बनने की महत्वाकांक्षा की अवसान कथा 'काला पन्ना' घटना प्रधान रोचक कहानी है। 'हिट लिस्ट' में पुलिसिया कार्य प्रणाली के काइयांपन को उधेड़ा गया है।

'विसर्जन', 'जीवनधारा', 'अर्थबोध', 'कब्रगाह' और 'सजा' संग्रह की वह कहानियां हैं, जिसमें लोकजीवन और पर्यावरण के गहरे भावबोध समाहित हैं। 'जीवनधारा' का गोपाल गुम हो रही मानवीयता के विरुद्ध मानुषभाव का बड़ा बिंब रचने का कर्म करता है। अगर कोई कहानी संकुचित और स्वार्थ पर टिके विश्वास को पुनीत सोच की राह दिखाने का कार्य करती है तो वह उसका सबसे बड़ा कहानीपन है। 'कब्रगाह' और 'सजा' में फैंटेसी का बेहतर उपयोग है। यह कहानियां संघर्ष, तनाव और विजन को लेकर चलती हैं, इसलिए महत्वपूर्ण बन पड़ी हैं। 'विसर्जन' का मृत्युंजय अपने पीछे 'परंपरा' को कठघरे में खड़ा कर जाता है और गोपाल की प्रतिक्रिया 'दिशाबोध' की कौंध बन जाती है।

'सॉरी पापा प्लीज पापा' बिलकुल अलग

कमलेश की कहानियां भाषा, भाव और शिल्प की दृष्टि से अत्यंत सहज है। कहानियों का समाजशास्त्र गवई निम्न एवं शहरी निम्न मध्य वर्ग से संबंधित है। कहानियों में नाटकीयता का अभाव एक खासियत के रूप में विद्यमान रहता है। घटनाओं/स्थितियों के विविध शब्द चित्रों को खास ढंग से संयोजित करके वे ऐसा तथ्यात्मक परिदृश्य निर्मित करने में माहिर हैं, जो पाठक की संवेदना को छू लेता है।

तरह के विषय पर लिखी गई कहानी है। 'शिखर' मूलतः उस बचपन का प्रतीक है। जिसे कभी हम अपने व्यावसायिक तनाव तो कभी अपने सपनों और आकांक्षाओं के लिए कुचलते हैं। यह अपनी भाषा और बुनावट से विशिष्ट बन पड़ी है। 'परित्याग' के इंस्पेक्टर अंगद और 'ललाइन' की केंद्रीय पात्र, जिसके लोक प्रचलित नाम पर कहानी का शीर्षक केंद्रित है। अपनी क्रियात्मक भंगिमाओं से पाठकीय चेतना पर अमिट छाप छोड़ने में सफल है। यह दोनों रेखाचित्र शैली में लिखी जीवंत कहानियां हैं।

सब कुछ समाप्त हो जाने के बाद भी आशाओं से भरे आकाश का होना ही रचनात्मकता की आत्मा है। यही से जिंदगी को चेतस बनाए रखने की कहानी की 'इक्ल्यूसिव' यात्रा का आरंभ होता है। 'किसके लिए' की रूपलता सिंह, 'सन्नाटे से बाहर' के अविनाश-गंगादेवी, 'कोई नहीं' के ज्योति और रोहिणी, 'अमोला' के सम्भू चाचा इसी सरोकार और सजगता के प्रतिदर्श हैं। 'चिट्ठी आई है' में एम. लाल और लाली के दांपत्य के बीच समझदारी और समर्पण का जो रूपक निर्मित हुआ है, वह पाठकीय चेतना पर देर तक अपना प्रभाव बनाए रखता है। 'कुलवंत सिंह की वापसी' और 'नख्लिस्तान' में उदात्त जीवन मूल्यों का ऐसा गंभीर ध्वनि-कंप उपस्थित है, जो मानुषभाव की प्रतिस्थापना का बिंब रच जाता है।

इस संग्रह की कहानियां सामाजिक चिंताओं और ज्वलंत यक्ष प्रश्नों से घिरी हैं। इसमें अंतर्विरोध के गहरे स्वर हैं, जिसे लेखक ने कलात्मकता और कौशल से सामने लाने का प्रयास किया है। कहीं-कहीं लेखक ने तथ्यों का अत्यंत बारीकी से वर्णन किया है, यहीं कहानी का आंगिक अनुपात गड़ाबड़ा गया है। यह स्थिति केंद्रीयता को भी कमजोर करती है। कमलेश को इससे बचना चाहिए। 'सजा', 'अमोला' और 'विसर्जन' इसी कमजोरी का शिकार होकर मास्टर पीस बनते-बनते रह गई हैं। यह अवश्य है कि संग्रह की अधिकतर कहानियां मानवीय संवेदना के विभिन्न धरातलों को स्पर्श करने में समर्थ हैं, ग्रामीण परिवेश और निम्न वर्गीय जीवन से जुड़े पात्रों का चित्रण सुंदर बन पड़े हैं। आंचलिक शब्दों और मुहावरों को भाषा में पिरोकर लेखक ने परिवेश को प्रामाणिकता की दिशा में ले जाने की अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है।

प्रथम दृष्टया यह संग्रह गरिमापूर्ण प्रतीत होता है। मुखपृष्ठ की छवि गंभीर साहित्यिक कृति के अनुकूल है। मुद्रण अच्छा है और पुस्तक में कागज उच्च गुणवत्ता का लगाया गया है। प्रूफ की कुछेक अशुद्धियां अवश्य हैं, जो खटकती हैं।

कविता

अन्वेषण की कविताएं

सुधीर रंजन सिंह

आलोचक

संपर्क :
65, शुभालय विला
कृपलानी,
भोपाल-462022 (म.प्र.)
मो. 9406542866

अगर हम किसी कविता में उसकी श्रेष्ठ बातें खोजने चलें तो उसमें जो सबसे जरूरी चीज होगी कवि का आत्मबोध। आत्मबोध के स्तर पर जो बात झंझोरती है, उसी के आसपास कला की गरिमा को भी परखी जा सकती है। इस स्तर पर असंगघोष की कविता हमें आश्वस्त करती है।

असंगघोष के काव्यसंग्रह 'अब मैं सांस ले रहा हूं' को आद्योपांत पढ़कर अब मैं सांस ले रहा हूं। पढ़ते हुए बीच में कई बार सांस अटकी थी। सोचना पड़ रहा था। कवि के आक्रोश के आगे डरना-सहमना पड़ रहा था। जब कवि कहता है, ''मेरी/कविताओं की/पढ़कर/तू चुप्पी क्यों ओढ़ लेता है'' तो उस चुप्पी में मैं खुद शामिल हो जाता हूं।

असंगघोष दलित कवि हैं। दलित कवि लेबल नहीं है, जैसे प्रगतिशील या जनवादी कवि। यह 'ब्लैक राइटर' जैसी कोई चीज है, जिसका संबंध मनुष्य की एक कैटेगरी विशेष से है - दमितों की परंपरा से है। दमितों में नकार और विरोध की चेतना जागी है, उससे है। दलित कविता का संबंध उस लहूलुहान अतीत की स्मृतियों से है, जो गलती से 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' के दायरे से बाहर रह गया है। यह परंपरा-ध्वंसी कविता है। इसकी अपनी शर्तें हैं, अपना शास्त्र है, शास्त्रविरोधी शास्त्र। दलित कविता का बिंब प्रचलित शैली अथवा कुल मिलाकर विधा के ध्वंस से, उसके प्रतिकूल होने से, बनता है। यह किसी आदर्श को नहीं मानती है, अपना आदर्श स्वयं गढ़ती है। परंपरा में जाने पर इसके सूत्र कहीं नहीं मिलते, यहां तक कि कबीर में भी नहीं। कबीर की ललकार में वह तोड़-फोड़ नहीं है, जो दलित कविता के बहिष्कारवादी स्वर में है। यह सवाल करके चुप नहीं रह जाती, जवाब मांगती है। अपने अनुभवों से सिखाने के लिए आमादा रहती है। समग्रतः इसके स्वभाव में शामिल है कि यह रूढ़ियों, परंपराओं, स्वीकृत पद्धतियों और प्रथाओं का विरोध करे और सामने वाले को टूटने पर मजबूर करे। इसके लिए यह पर्याप्त नहीं कि यह दूसरे की 'समझ' को साझा करे और अपने लिए स्वीकृति का द्वार खोले। अस्वीकृति में ही यह अपनी सफलता देखती है।

दलित कविता का अपना राष्ट्र है, अपनी अलग जमीन है। आज हम उग्र राष्ट्रवाद के दौर से गुजर रहे हैं। उसके उत्तर में दलित अभिव्यक्ति को रखकर देखा जा सकता है- स्वयं असंगघोष की कविता को। एक कविता है 'राष्ट्रवाद'। राष्ट्रवाद अभिजात वर्चस्व की राजनीति का अंग है। वह भेद और समानता से आंख मूंदकर 'दमन' को शक्ति प्रदान करता है। वह भुला देता है कि भारतीय समाज में जातिवाद एक ऐसा कठोर सत्य है जिसका सामना किए बगैर 'राष्ट्रहित' की बात करना बेमानी है। इस समझ पर आधारित है कविता। कवि जब अंत में कहता है, ''भारतमाता की जय कहो/या/देश से बाहर जाओ'' तो उसमें निर्वासन-बोध झलकता है।

अगर हम किसी कविता में उसकी श्रेष्ठ बातें खोजने चलें तो उसमें जो सबसे जरूरी चीज होगी कवि का आत्मबोध। आत्मबोध के स्तर पर जो बात झंझोरती है, उसी के आसपास कला की गरिमा को भी परखी जा सकती है। इस स्तर पर असंगघोष की कविता हमें आश्वस्त करती है।

आत्मबोध का एक पक्ष निर्वासनबोध है तो दूसरा आक्रोश। उग्रता और आक्रोश दलित कविता की मुख्य अंतर्वस्तु है, जिसका संदर्भ जातिगत उत्पीड़न है। जाति व्यवस्था हिंदू धर्म की क्रियाशीलता का एक ऐसा अंग है, जो मूलगामी राष्ट्रीय चेतना का विरोधी है। देश की एकता का सवाल समानता के सिद्धांत पर निर्भर करता है। आरक्षण की व्यवस्था इसी सिद्धांत के आधार पर की गई थी जिसका सवर्ण तबके द्वारा हमेशा से विरोध होता रहा है। असंगघोष का जवाब है आरक्षण तभी खत्म हो सकता है जब जातिवाद को समाप्त कर दिया जाए। असल में जातिवाद का मूल आधार आर्थिक से अधिक सांस्कृतिक है। इसके पीछे श्रेष्ठताबोध छुपा होता है। उस बोध को समाप्त किए बगैर राष्ट्रीय एकता की समस्या का हल संभव नहीं है। कविता है 'जातिवाद खत्म कर' जो इस पंक्ति पर खत्म होती है - ''जातिवाद के खात्मे की बात/क्या उसे सड़ांध मारती अपनी श्रेष्ठता के/खो जाने का भय नहीं है?'' कवि का पूरा आक्रोश 'श्रेष्ठता' पर फूटा है, जो सर्वथा उचित है। लेकिन यहां ठहर कर सोचने की भी आवश्यकता है।

क्रोध और आक्रोश पर नियंत्रण करके भी लड़ाई जीती जा सकती है। मूलगामी राष्ट्रीय चेतना के विकास में सामाजिक न्याय की लड़ाई बड़ी भूमिका निभा रही है और आगे तक के लिए भी वह कारगर है। सामाजिक न्याय का एक दौर पूरा हो चुका है। दलितों ने एक सीमा तक सत्ता और सम्मान हासिल कर लिया है अब उसे दूसरे दौर में प्रवेश करना है। ज्ञान के क्षेत्र में सवर्ण वर्चस्व को चुनौती देना उसकी आवश्यक शर्त है। इस दृष्टि से दलित वर्ग जितना अधिक सक्रिय होगा, जनक्षेत्र (पब्लिक स्फीयर) में उसका प्रभाव उतना ही बढ़ेगा। मीडिया, संस्कृति, विज्ञान-प्रौद्योगिकी, न्यायपालिका आदि में इस वर्ग की समुचित भागीदारी से 'सवर्ण दंभ' नियंत्रित हो सकता है और समानता के क्षेत्र का दरवाजा खुल सकता है। समानता की बात मैं जब कर रहा हूं तो उसका आशय लोकतांत्रिक समानता से है। एक मंजिल के बाद वह भी नाकाफी हो जाती है।

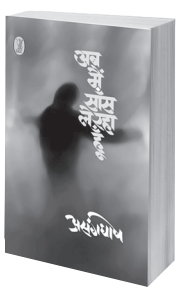

पुस्तक : अब मैं सांस ले रहा हूं
लेखक : असंगघोष
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ : 111
मूल्य : ₹ 250

असली सवाल है जाति को वर्ग में रूपांतरित करने और उसके आधार पर संस्कृति के निर्माण का। इस विजन से काम की आवश्यकता है। असंगघोष की कविता प्रथम दौर की आवश्यकता को निस्सदेह पूरा करती है, दूसरे दौर में प्रवेश की चेष्टा करती है, लेकिन उस बिंब का निर्माण करने की दृष्टि से अभी पीछे है जिसका मूलाधार वर्ग-रहित समाज का दर्शन है। यह, मेरी समझ से, एक ऐतिहासिक सीमा है, जिसका अतिक्रमण भी एक गड़बड़ मामला साबित हो सकता है। वामपंथियों के साथ यह आमतौर पर देखने को मिलता है।

यह अच्छी बात है कि असंगघोष की कविता वर्ग-रहित समाज के सिद्धांत की बुनियादी आवश्यकता को पूरा करती है। इसमें सामंतवाद, पूंजीवाद और फासीवाद का नाकार है। यह नास्तिक चेतना की कविता है। एक कविता है- 'मिथकों को नकारता हूं': 'सरेआम/निर्वस्त्र कर/जिसे तूनू/पूरे गांव में घुमाया/उस अबला का/चीर बढ़ाने/कृष्ण क्यों नहीं आया?' यहां मकसद कृष्ण के मिथक को तोड़ना भर नहीं है। दलित और स्त्री के साथ हो रहे कुत्सित व्यवहार का साक्षात्कार भी है। एक दूसरी कविता है 'पत्थर के देवता': 'अपना/पिछवाड़ा/पोंछकर/जिस पत्थर को/फेंका/उसे उठा/नहला/घी-तेल /सिंदूर/मारीपन्ना लगा/पूजना शुरू कर दिया।' यह हिंदू धर्म पर करारा व्यंग्य है।

सवाल है कि कवि स्वयं क्यों हिंदू बना हुआ है? एक कविता है 'हां, मैं हिंदू हूं', उसमें जवाब है - 'मैंने अपना धर्म/नहीं बदला/केवल इसलिए/कि उसे भरपूर गालियां दे सकूं/उसकी हर करतूत को/दुनिया के सामने उजागर कर सकूं।' यह तर्क पूर्णतः सही नहीं है। इससे तो हिंदू धर्म की शक्ति का ही बोध होता है। हिंदू धर्म का कोई एक केंद्र नहीं है, जिस पर आघात ही मनाही हो। यही बात हिंदू धर्म को थोड़ा प्रासंगिक बनाती है। इसकी विकेंद्रीयता और विविधता को जिस तरह से समाप्त करने की चेष्टा की जा रही है, उसमें हिंदू होने का सेक्यूलर मूल्य बचा हुआ है। इस दृष्टि से असंगघोष का हिंदू बना रहना उचित है।

हिंदू धर्म का अंधराष्ट्रवाद में रूपांतरण किया जा रहा है। इस संबंध में असंगघोष की सोच बहुत साफ है रू 'अंधराष्ट्रवाद/भारत माता की जय से/शुरू होता है, और/निजामात हासिल करने पर आकर/खत्म हो जाता है/इन दोनों के बीच जन-गण-मन/सिरे से गायब है।' लोकतंत्र की धुरी को कमजोर करने की चेष्टाओं का, कहने की आवश्यकता नहीं, असंगघोष की कविता पदार्फाश करती है।

असंगघोष की कविता, जैसे कि शुरू में ही कहा गया है, दलित परंपरा के अन्वेषण की कविता है, जिसमें कवि का गहरा आत्मबोध भी शामिल

असंगघोष की कविता, जैसे कि शुरू में ही कहा गया है, दलित परंपरा के अन्वेषण की कविता है, जिसमें कवि का गहरा आत्मबोध भी शामिल है । शब्द-रूप, बिंब और लय के स्तर पर कवि ने पर्याप्त रूप से अपने को साधने का प्रयास किया है। यथार्थ के वर्णन और विद्रोह की अभिव्यक्ति, दोनों स्तर पर यह एक सफल काव्य संग्रह है।'

है: 'हमारे दुख/बहुत काले थे/बेचिराग धरों के अंधेरों में/कभी किसी बाहरी को दिखाई नहीं दिए/हम भुगतते रहे अनेकानेक यातनाएं/हमारे ऊपर लादी वर्जनाओं के बोझ तले/हम केवल चीख पाए/हमारी चीखें/यातना कोठरी की दीवारों से टकराकर/हमारे ही पास लौट आईं।' हिंदी कविता की परंपरा से शब्द उठाकर कहें तो यह मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' का एक दूसरा पाठ है। दलित पाठ! इसमें आत्माभिव्यक्ति की चेतना सक्रिय है। कवि सामाजिक अनुभव को आत्मानुभव के स्तर पर जीने की चेष्टा करते हुए दिखाई पड़ता है।

अत्याचार के प्रतिकार में कवि किसी सीमा तक जाने को तैयार है। एक कविता है 'बेनकाब करूंगा'। इसमें कावू डाकू बन जाता है और बदला लेने की बात करता है। यह राजनीतिक चेतना के स्तर पर कमजोर मामला है। डाकू बनने की आवश्यकता नहीं, समाज के डाकुओं को नष्ट करने के लिए संगठनबद्ध होने की आवश्यकता है। ऐसी ही आवश्यकता को लेकर मुक्तिबोध ने 'चंबल की घाटी में' कविता लिखी थी।

कवि के पास भावावेग होना चाहिए। भावावेग की सही अभिव्यक्ति हो तो उसमें मारक शक्ति होती है। ऐसी ही मारक शक्ति की कविता है - 'सुन लो': 'बादलों! मेरे और सूरज के/बीच/आना मत/वरना/वरना/तुम भी निशाने पर लिए जाओगे।' यह शुद्ध भावावेग की कविता है। बात बन गई है।

दलित कविता आधुनिक कविता का उर्वर संदर्भ है। इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। टाला नहीं जा सकता। असंगघोष का यह बोध बिलकुल दुरुस्त है कि दलित जब अपनी यंत्रणा के बारे में लिखता है तो उसके महत्व को समझने में आनाकानी करते हैं, कपोल कल्पना कहकर उससे किनाराकशी कर लेते हैं। इस दृष्टि से 'स्वानुभूति' एक अच्छी कविता है।

असंगघोष दलित यथार्थ-बोध के सफल कवि हैं। संग्रह की एक उल्लेखनीय कविता है 'क्या नहीं है जातिवाद'। इसमें दिखाया गया है कि जाति की भावना बचपन से ही भरी जाती है। गांव के स्कूल में बच्चे जातिवार बैठाए जाते हैं। सबसे पिछली कतार में दलित बच्चे बैठते हैं। स्कूल के शिक्षक उन्हें हीन दृष्टि से देखते है। उनसे झूठे बर्तन साफ करवाते हैं। दलित आवाज उठाते हैं तो उनकी पिटाई कर दी जाती है। कविता लंबी है। इसमें जाति-भेद का एक अच्छा आख्यान प्रस्तुत हुआ है।

एक कविता है 'करोड़ों ग्राम'। यह गुड़गांव के नाम बदलने पर है। बहुत प्रासंगिक कविता है। आज का शासक वास्तविक समस्याओं से जनता का ध्यान हटाने के लिए शहरों का नाम बदलने जैसे उल्टे-सीधे काम करता है। कविता में अपनी तरफ से कुछ नहीं किया गया है। सिर्फ नाम की तुकबंदी की गई है जिसमें खतरनाक राजनीतिक इरादों के संकेत हैं - गुरूग्राम/घंटा ग्राम/घड़ियाल ग्राम/चोटीग्राम/तिलकग्राम/नागाग्राम/भभूतग्राम/निक्करग्राम/लाठी ग्राम/भगवाग्राम...। आगे और कई 'ग्राम' हैं। कविता में किस राजनीतिक धारा पर चोट है, अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है।

'अब मैं सांस ले रहा हूं' (संग्रह का नाम भी यही है) एक फैंटेसी कविता है। कवि कब्र में है। कोई उसकी कब्र खोद गया है। जाते समय कब्र को बंद करना भूल गया है। कवि कहता है - 'लंबे समय के बाद/अब मैं सांस ले रहा हूं।' वाल्टर बेंजामिन ने लिखा है, ''अगर दुश्मन जीत गया तो मर चुके मनुष्य भी सुरक्षित नहीं हैं।'' इस कविता में मरकर भी जीने की शक्ति का परिचय दिया गया है। यानी यहां सांस लेना केवल क्रिया नहीं है।

मैने असंगघोष के पिछले संग्रह पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि कलात्मक अनुभव के स्तर पर यह कम आश्वस्त करती है। 'अब मैं सांस ले रहा हूं' में कलात्मक अनुभव का विकास हुआ है। शब्द-रूप, बिंब और लय के स्तर पर कवि ने पर्याप्त रूप से अपने को साधने का प्रयास किया है। यथार्थ के वर्णन और विद्रोह की अभिव्यक्ति, दोनों स्तर पर यह एक सफल काव्य संग्रह है।'

नर से नारायण बनने का संदेश

दिनेश पाठक 'शशि'

साहित्यकार

संपर्क :
28, सारंग विहार, मथुरा-6 (उ.प्र.)
मो. 9412727361

आधुनिकता के नाम पर हम उच्छृंखल होते जा रहे हैं जिस पर लेखक की टिप्पणी विचारणीय है कि, ''आधुनिकता का अर्थ मौज-मजे के नए-नए तरीके ढूंढ़ना नहीं है बल्कि नवाचारी सोच ही हमें आधुनिक बनाती है ताकि हम नए दौर के जीवनोपयोगी बदलावों को अपने परिवेश के अनुकूल ढाल कर अपने मनुष्य होने की पहचान को निखार सकें।''

हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में साधिकार लेखनी चलाने वाले चिंतक एवं वक्ता, विद्वान बल्देव भाई शर्मा की पुस्तक 'महका करें हम' एक ऐसा ग्रंथ है जिसकी रचना, पूर्ण उर्जस्वित अविकल भाव से, गहन चिंतन, मनन के साथ की गई है। बल्देव भाई शर्मा ने लेखन में बहुत से नए प्रयोग किए हैं और यही कारण है कि उनकी प्रत्येक पुस्तक एक विशिष्ट पहचान बनाती है।

गत 35 वर्षों से पत्रकारिता में सक्रियता के परिणामस्वरूप उनकी पुस्तकें 'अपने समय का भारत', 'आध्यात्मिक चेतना और सुगंधित जीवन', 'भारतः सांस्कृतिक चेतना का अधिष्ठान' तथा 'राष्ट्रीय चेतना के विविध आयाम' जैसी उत्कृष्ट एवं मानवतावादी, जीवनोपयोगी पुस्तकों की रचना हुई।

पुस्तक 'महका करें हम' में छब्बीस महत्वपूर्ण आलेख समाहित किए गए हैं। पहला आलेख 'गीताः अमरता का मंत्र' यह सिद्ध करने में पूर्ण समर्थ है कि गीता केवल धर्मग्रंथ नहीं है। लेखक के अनुसार- ''श्रीमद्भागवतगीता जो स्वयं भगवान की वाणी है, केवल धर्मग्रंथ न होकर मनुष्य मात्र के लिए एक श्रेष्ठ जीवन दर्शन है। यह देश, काल और संप्रदाय की परिधि लांघकर समूचे मानव कल्याणार्थ रचा गया। इसके अध्ययन और मनन से व्यक्ति जीवन के सत्य को प्रत्यक्ष अनुभव करता है।'' (पृ.17)

पुस्तक के दूसरे आलेख 'नर से नारायण बनने का बोध' में लेखक ने वर्तमान अतिभौतिकता की दौड़ में लगे हुए मानव की निरीहता को चित्रित करते हुए लिखा है कि, ''इस दौर में खूब भौतिक तरक्की हुई है। आदमी 'मोर एंड मोर' का मंत्र जपता रहता है यानी कुछ भी कम नहीं चाहिए, ज्यादा से ज्यादा चाहिए फिर चाहे इसके लिए दूसरों का सुख ही क्यों न हड़पना पड़े। इस दुनियावी तरक्की के दौर में आत्मतत्व यानी मनुष्यता कहीं पीछे छूटती जा रही है।'' (पृ. 22)

लेखक ने आगे नर से नारायण बनने की प्रक्रिया को अद्भुत तरीके से व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि ''हिंदू चिंतन में नर से नारायण बनने की यात्रा के जो पड़ाव बताए गए हैं उनकी व्याख्या बड़ी सार्थक है। नर, नर-पशु, नर-पिशाच, नरोत्तम और फिर नारायण। नर माने व्यक्ति के सामने जीवन के दो मार्ग हैं जो उसे या तो नर-पिशाच बनने की ओर ले जाते हैं या नारायण बनने की ओर। अपने सुख में डूबा व्यक्ति (नर) दूसरे के दुखों से अलिप्त रहता है यानी उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई दुखी रहे या सुखी रहे। बस वह सुखी रहे लेकिन जब वह दूसरों के दुख से आनंदित होता है तो वह नर पशु है, जब वह अपने सुख के लिए दूसरों को दुख देता है तो नर-पिशाच बन जाता है। इसके विपरीत जब वह दूसरों के दुख से न केवल दुखी होता है बल्कि दूसरों के दुख को दूर करने के लिए तत्पर होता है और दूसरों के दुख को दूर कर आनंदित होता है तब वह नरोत्तम बन जाता है। यह नरोत्तम होना ही

पुस्तक : महका करें हम (अध्यात्म-संस्कृति से संवाद)
लेखक : बल्देव भाई शर्मा
प्रकाशक : आलोक पर्व प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-32
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ : 120
मूल्य : ₹ 250

नारायण बनने की ओर चलने की पहली सीढ़ी है। तब वह परमात्म तत्व से जुड़ जाता है। (पृ. 23)

पुस्तक के अगले आलेख का शीर्षक है-'जश्न में जीवन की प्रेरणा को न भूलें'। चाहे किसी के जन्मदिन का अवसर हो या फिर नव वर्ष का आगमन-उत्सव, भारतीय समाज अतिभौतिकता एवं आधुनिकता की दौड़ में पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण में अपनी संस्कृति को विस्मृत करता जा रहा है। वह अपने अतीत की महत्ता को नजरअंदाज करने में भी संकोच नहीं कर रहा। डॉ. बल्देव भाई शर्मा ने इस पर अपनी चिंता दर्ज करते हुए लिखा है, ''जिसे हम भुला देने को आतुर दिखते हैं उस अतीत में ही हमारे उन असंख्य देशभक्त बलिदानी हुतात्माओं की गाथाएं हैं जिनके त्याग और बलिदान के कारण आज भारत जिंदा है और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में सीना तानकर खड़ा है।'' (पृ. 26)

आधुनिकता के नाम पर हम उच्छृंखल होते जा रहे हैं जिस पर लेखक की टिप्पणी विचारणीय है कि, ''आधुनिकता का अर्थ मौज-मजे के नए-नए तरीके ढूंढ़ना नहीं है बल्कि नवाचारी सोच ही हमें आधुनिक बनाती है ताकि हम नए दौर के जीवनोपयोगी बदलावों को अपने परिवेश के अनुकूल ढाल कर अपने मनुष्य होने की पहचान को निखार सकें। (पृ. 27)

'जीना सीख लिया तो खुशी भी मिलेगी' शीर्षक है पुस्तक के अगले आलेख का। आज के मानव ने सुख-सुविधाओं को जुटाने को ही जीवन मान लिया है और उसी में वह अपने जीवन के अधिकांश अमूल्य समय को गुजार देता है। लेखक का मानना है कि ''लालसाएं कीमत वसूलती हैं, वे पूरी होकर व्यक्ति को भौतिक रूप से तो संपन्न बनाती जाती हैं लेकिन मन की अतृप्ति को उतना ही बढ़ाती भी है और आदमी अंदर से खोखला सा होता चला जाता है। यह खोखलापन उसे अंततः एक तनाव, अवसाद और निरर्थकता की ओर ले जाता है।'' (पृ. 29)

आमतौर पर आदमी को गलतफहमी रहती है कि सुख वस्तुओं में या साधनों में है। इसलिए वह इन्हीं को पाने को दौड़ता है और उसका मन व जीवन धीरे-धीरे एक अराजकता का शिकार होता चला जाता है। (पृ. 30)

अंत में लेखक ने इस आलेख द्वारा हिंदू दर्शन में बताए गए जीवन के चार पुरुषार्थ-

'महका करें हम' पुस्तक में जगह-जगह मनुस्मृति, अथर्ववेद, ऋग्वेद, गीता, रामायण, माकण्र्डेयपुराण, श्रीमद्भागवद्पुराण, शिवपुराण, स्कंदपुराण, दुर्गासप्तशती, विवेकचूड़ामणि, तैत्तिरीयोपनिषद आदि के उद्धरणों से लेखक की गहन अध्ययनशीलता एवं भारतीय धर्मग्रंथों के प्रति रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। पुस्तक निश्चित ही संपूर्ण मानव जाति की हित साधक सिद्ध होगी ऐसी आशा है।'

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के माध्यम से संयम और गलत इच्छाओं के त्याग का उल्लेख करते हुए अवसाद व निरर्थकता बोध से मुक्ति का साधन बताया है।

'पुस्तकें सिखाती हैं कि कैसे जिएं' में पुस्तकों की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है तो 'भक्ति से होता है मनुष्यता का विस्तार' में श्रीरामचरित मानस, गीता, गीत गोविंद और कामायनी पुस्तकों के उद्धरण देते हुए सिद्ध किया है कि ''भक्ति तो मणिदीप है जो अंदर से प्रकाशित है, उसे तेल-बत्ती जैसे बाह्य साधनों की जरूरत नहीं। वह हर झंझावात में, आंधी-तूफान में भी प्रकाशमान रहती है। (पृ. 37)

'समन्वय में ही है सुख-शांति का मार्ग' शीर्षक है पुस्तक के अगले आलेख का। भारतीय जीवन दर्शन एकता का पाठ पढ़ाता है। वह कदम-कदम पर एकात्मवाद की बात करता है। यही बात विद्वान लेखक ने अपने इस आलेख में समझाने का प्रयास किया है कि ''व्यक्ति, परिवार, समाज और आत्मतत्व सबके बीच परस्पर टकराव की किसी आशंका की गुंजाइश भारतीय जीवन दर्शन में नहीं है, बल्कि ये सब एक-दूसरे के पूरक हैं। इसी पूरकता और एकात्मता का बोध अध्यात्म कराता है। यही भारत की पहचान है। (पृ. 43)

'होली की ठिठोली में भरमाएं नहीं', में होली के असली उद्देश्य की ओर ध्यानाकर्षण की चेष्टा की गई है तो 'आध्यात्म चेतना का आधार बने शिक्षा' में भारतीय शिक्षा के गिरते स्तर पर चिंता व्यक्त करते हुए उसे आध्यात्मिक चेतना का आधार बनाए जाने की अपील विद्वान लेखक ने की है तभी विश्व में उसको प्रतिष्ठा मिलेगी।

'हम भक्तन के, भक्त हमारे' इस आलेख में अनेक उदाहरणों के माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि भगवान भक्त वत्सल हैं। ''भगवान सुने, इसके लिए छल-प्रपंच छोड़कर मन और जीवन को निर्मल बनाओ, उसे लालसाओं से, वासनाओं और विकृतियों से मुक्त बनाओ तब भगवान के प्रति प्रेम और भक्ति जगेगी।'' (पृ. 54)

आलेख 'मूर्ख बनाकर मजाक न उड़ाएं' में एक अप्रैल को मूर्ख दिवस मनाने वालों एवं किसी न किसी बहाने दूसरों को मूर्ख समझने वालों को यथार्थ स्थिति से अवगत कराने का प्रयास है। ''दूसरों की मूर्खता का मजाक उड़ाकर मजा लेने की बजाय हम स्वयं की मूर्खताओं को समझें और विवेकशील बनें ताकि हमारी सोच व जीवन दूसरों को आनंदित करने वाला और कल्याणकारी बने। यही भारतीय चिंतन है कि दूसरों की गरिमा का सम्मान करें।'' (पृ. 58)

भारतीय संस्कृति सत्यम् शिवम सुंदरम् की संस्कृति रही है। पाश्चात्य के अनुकरण से सिवाय स्वार्थपरता, शोषण, उत्पीड़न और ईर्ष्याभाव से कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। चिंतक बल्देव भाई शर्मा ने 'भगवान महावीर के दिखाए मार्ग पर चलें' शीर्षक आलेख में भी इसी बात की पक्षधरता की है। ''भारतीय चिंतन में वेद से लेकर उपनिषद और अन्य शास्त्रों में मनुष्यता के जिस जीवन दर्शन का जगह-जगह उल्लेख है और हमारे अध्यात्म की जो मूल दृष्टि है, वह पूर्णता में भगवान महावीर के सिद्धांतों और दर्शन में परिलक्षित होती है।'' (पृ. 61)

आज अधिकांश माता-पिताओं ने अपने बच्चों के भविष्य को कैरियर, पैकेज और परसेंटेज के चक्र में फंसाकर उन्हें भावनाहीन, रोबोट बना दिया है। बच्चे का बचपन क्या होता है, इसकी अनुभूति तो बच्चा कर ही नहीं पाता। इसी प्रकरण को लेकर लेखक ने चिंता व्यक्त की अपने आलेख 'बच्चों को बुद्धू नहीं बुद्ध बनाएं' में। ''आज कितनी माताएं हैं जो अपनी संतानों को आत्मज्ञान देते हुए उन्हें सद्गुण-सदाचार से जीवन जीने की राह दिखाती हैं। पैसा, पद, पावर यही जीवन का मंत्र बन जाए तो सब एक-दूसरे से उसे छीनने

लग जाते हैं फिर कौन सुखी और चैन की जिंदगी जी पाएगा?'' (पृ. 64)

धर्म का मार्ग ही सही मार्ग है और जीवन में उसी का अनुसरण करने की शिक्षा देता है आलेख 'सोने की कसौटी पर जिंदगी की चमक'। तड़क-भड़क और दिखावे में विश्वास करने वाली नई जैनेरेशन के दिखावापूर्ण व्यवहार की ओर इंगित किया गया है आलेख 'उपहारों के बीच मां के दर्द को न भूलें' में। इस आलेख के माध्यम से लेखक ने स्मरण कराया है कि एक दिन मदर्स डे मनाकर सालभर के लिए मां-बाप को भूल जाना भारतीय संस्कृति नहीं है। ''भारत में वेद काल से मां की संकल्पना को विस्तार और महत्व दिया गया। माता और संतान का संबंध दिखावे और तोहफों के लेन-देन से परिभाषित नहीं होता, बल्कि यह एक अनुभूति है जो हमें बंधुत्व का, संबंधों के विस्तार व प्रगाढ़ता का और मनुष्यता का संस्कार देती है।' (पृ. 75)

'मृत्यु के बाद मृत्युंजय बनें' आलेख नेत्र दान और शरीर दान के महत्व को प्रतिपादित करता है। 'नदी संस्कृति अध्यात्म की जननी है' विषयक आलेख में नदियों की महत्ता को दर्शाकर उनकी दुर्दशा पर चिंता व्यक्त की गई है।

'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है', 'जो देता है सो देवता' तथा 'धर्म के संस्कार से लक्ष्मी की शोभा' आलेख, मनुष्य को धर्म का आचरण करते हुए धन कमाने की सीख देता है-''धर्म के संस्कार के बिना या गलत तरीकों से अर्जित लक्ष्मी कामनाओं की पूर्ति नहीं करती बल्कि लिप्साओं, लालसाओं को बढ़ाती है और एक दिन ले डूबती है।'' (पृ. 96)

'सकारात्मकता से मिलती है रचनात्मक ऊर्जा'-आलेख में प्रखर चिंतक व मनीषी लेखक ने अपने जीवन के कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हुए जीवन में सकारात्मकता के महत्व को प्रतिपादित किया है -''जीवन में महानता या सफलता पाना महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि अहमियत इस बात की है कि आपने अपने और दूसरों के उन्नयन के लिए कितना सार्थक जीवन जिया।'' तथा...''सद्गुण-सदाचार से युक्त दूसरों के हित में लगा जीवन ही सबका प्यार और सम्मान पाता है।'' (पृ. 98)

व्यक्ति के मन के संस्सकार और जीवन को गढ़ने में परिवेश और संगति की बड़ी भूमिका रहती है। इसी से उसके जीवन का

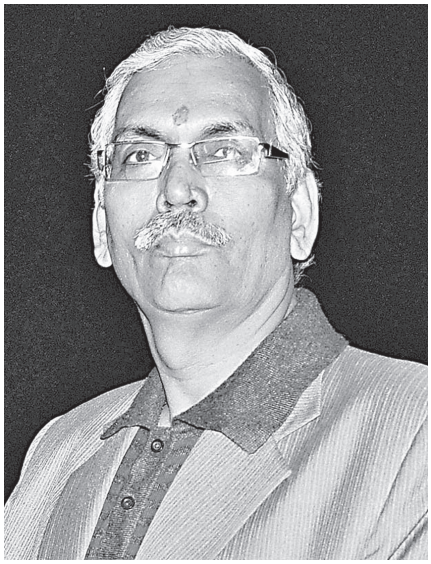

बल्देव भाई शर्मा द्वारा रचित 'महका करें हम' पुस्तक में संग्रहीत प्रत्येक आलेख लीक से हटकर मौलिकता के साथ नर से नारायण बनने हेतु कुछ न कुछ संदेश अपने में समाहित किए हुए है। सांसारिक जीव जगत के हित के लिए कल्पवृक्ष या कामधेनु स्वरूप है जो लेखक के प्रखर चिंतन एवं बुद्धिमत्ता को सिद्ध करता है।

लक्ष्य और उस तक पहुंचने का रास्ता तय होता है। (पृ. 99)

'भारतीय दृष्टि और संस्कार से युक्त हो मीडिया' आलेख में पीत पत्रकारिता पर चिंता व्यक्त करते हुए, संस्कार युक्त मीडिया की हिमायत की गई है तो 'मनुष्यता और वैश्विक चेतना का पोषक है दीनदयाल जी का चिंतन' में दीनदयाल जी के बचपन से मृत्युपर्यंत तक के जीवन की सच्चरित्रता, मानवीयता एवं देशभक्ति की भावना तथा राजनैतिक दर्शन को पूर्ण रूप से उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया गया है। ''दीनदयाल जी ने पत्रकारिता हो या राजनीति अथवा समाज सेवा व विकास, हर क्षेत्र में व्यापक जनहित और राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर चिंतन की सही दिशा तय की।'' (पृ. 111)

पुस्तक का पच्चीसवां आलेख है 'श्राद्ध कर्मकांड नहीं जीवन की प्रेरणा है' जिसमें श्राद्ध कर्म की तथ्यपरक मीमांसा की गई है। वे लिखते हैं कि, ''यह भी विडंबना ही है कि परंपरा का पालन मजबूरीवश करते हुए कुछ लोग पितरों का श्राद्ध तो ठाट-वाट से करेंगे, ब्राह्मणों को खूब स्वादिष्ट भोजन कराके उन्हें अच्छी दान-दक्षिणा, वस्त्रादि देंगे लेकिन चकाचौंध भरी जिंदगी में माता-पिता या अन्य बुजुर्ग प्यार या सम्मान को तरसते हैं। यह श्राद्ध नहीं दिखावा है। जीवित माता-पिता या बुजुर्ग घर में उपेक्षित रहें और मृत जनों का धूम-धाम से श्राद्ध करें, यह पाप है। ऐसा करने वालों की आत्मा कैसे तृप्त होगी जब जिंदा बुजुर्ग अशांति और क्लेश में जी रहे हैं।'' (पृ. 116)

'नित्य मन का परिमार्जन करता है अध्यात्म' आलेख पुस्तक का छब्बीसवां यानी आखिरी आलेख है। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के जीवन के उद्धरण के माध्यम से विद्वान लेखक ने बहुत ही सहज रूप से अध्यात्म की महत्ता पर प्रकाश डाला है। ''अध्यात्म मन के अंदर झांकना सिखाता है और मन के मैल को धोता है। अध्यात्म साधना से ज्यादा एक दैनिक क्रिया है जो मन को संस्कारी असंयमी बनाकर हमारे बोलने, खाने-पीने, दूसरों के साथ व्यवहार में मानवोचित तरीके से व्यक्त होती है। अध्यात्म मन का परिमार्जन यानी उसे रोज मांजना है।'' (पृ. 120)

बल्देव भाई शर्मा द्वारा रचित 'महका करें हम' पुस्तक में संग्रहीत प्रत्येक आलेख लीक से हटकर मौलिकता के साथ नर से नारायण बनने हेतु कुछ न कुछ संदेश अपने में समाहित किए हुए है। सांसारिक जीव जगत के हित के लिए कल्पवृक्ष या कामधेनु स्वरूप है जो लेखक के प्रखर चिंतन एवं बुद्धिमत्ता को सिद्ध करता है। पुस्तक में जगह-जगह मनुस्मृति, अथर्ववेद, ऋग्वेद, गीता, रामायण, माकण्डेयपुराण, श्रीमद्भागवद्पुराण, शिवपुराण, स्कंदपुराण, दुर्गासप्तशती, विवेक चूड़ामणि, तैत्तिरीयोपनिषद आदि के उद्धरणों से लेखक की गहन अध्ययनशीलता एवं भारतीय धर्मग्रंथों के प्रति रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है। पुस्तक निश्चित ही संपूर्ण मानव जाति की हित साधक सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

कहानी

मर्म को छूती कहानियां

ऋचा द्विवेदी

आलोचक

संपर्क :
1260, नया रामनगर,
पाठक का बगीचा
अजनारी रोड,
उरई-285001 (उ.प्र.)
मो. 8755192890

लेखिका ने अपनी कहानियों में नारी के इर्द-गिर्द बुने नैतिकता के जाल और प्रतिष्ठित सामाजिक मान्यताओं को तोड़ने की कोशिश की है। उन्होंने नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण कर उसे यथार्थ के धरातल पर आसीन किया है। उनकी कलम ने स्त्री-जीवन के हर पहलू का स्पर्श किया है। वह अपनी कहानी में पुरुष-सत्ता को ललकारते हुए चुनौती देती नजर आती है। स्त्री-जगत के मर्म को छूती हुई उनकी कहानियां सामाजिक-व्यवस्था के लिए चुनौती देती हुई लगती हैं।

एक लंबे अंतराल के बाद हमारी प्रिय लेखिका का नया कहानी संग्रह हमारे समक्ष आया है। जी हां, मैं बात कर रही हूं हमारी प्रिय लेखिका मन्नू-भंडारी की। मन्नू जी किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। जब जिक्र मन्नू जी का हो तो बरबस ही 'आपका बंटी', 'महाभोज' (उपन्यास), कहानी- 'मैं हार गई', 'एक कहानी यह भी' आदि अनायास ही मस्तिष्क में सौंधी स्मृति के साथ दस्तक दे जाती हैं।

मन्नू जी की कलम जब साहित्य के समन्दर में उतरती है तो एक मंजे हुए अनुभवी गोताखोर की तरह गहराई तक जाकर, हर दिशा में भ्रमण करते हुए समुद्र की तलहटी का स्पर्श करती है। उनकी रचनाओं में उथलापन नहीं है, गइराई है। उनमें एक साथ प्रभावोत्पादकता व गंभीरता परिलक्षित होती है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में जीवन की जटिल और गहरी सच्चाइयों का साक्षात्कार करने की चेष्टा की है।

लेखिका ने अपनी कहानियों में नारी के इर्द-गिर्द बुने नैतिकता के जाल और प्रतिष्ठित सामाजिक मान्यताओं को तोड़ने की कोशिश की है। उन्होंने नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण कर उसे यथार्थ के धरातल पर आसीन किया है। उनकी कलम ने स्त्री-जीवन के हर पहलू का स्पर्श किया है। वह अपनी कहानी में पुरुष-सत्ता को ललकारते हुए चुनौती देती नजर आती है। स्त्री-जगत के मर्म को छूती हुई उनकी कहानियां सामाजिक-व्यवस्था के लिए चुनौती देती हुई लगती हैं।

उनके पात्र लेखनी के स्पर्श मात्र से जीवंत हो उठते हैं। वह कठपुतली की तरह नहीं हैं, ऐसा लगता है कि मांस-रज्जु से युक्त मानव-देह धारण किए हुए हैं और हमारी आंखों के समक्ष चलते फिरने लगते हैं। उनके पात्र मानसिक अंतर्द्वंद्व से घिरे रहते हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'करतूते मरदां' का नायक किस तरह लड़कियों से घिरा रहता है। बेचारी सीधी-सादी 'सुल्ली' उसके प्रेम-जाल में फंस ही जाती है। नायक, नायिका के समक्ष अपनी अभिलाषा रखता है कि ''तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए''। यहां तक कि नायक सीधे उसके घर पहुंच जाता हो, उसका गाना सुनने। नायिका का बड़ा भाई कहता है- ''अरे, मजमा तो आपका गीत सुनने के लिए जमता है, ए क्या गीत सुनाएगी भला?''

सुल्ली की दुनियादारी में पगी मां तुरंत ही नायक की नीयत को भांपकर कहती है- ''अरे, सुल्ली, देख तो ए इतनी दूर से चलकर आए और तू बैठी मुंह ही ताक रही है इनका टुकुर-टुकुर! चाय नहीं पिलाएगी मेहमान को ? जा, जल्दी से चाय बनाकर तो ला गरमागरम।''

जब सुल्ली चाय ले आती है तो बरसात के मौसम में नायक फिर आग्रह करता है- ''अब तो आप इस मौसम के अनुकुल कोई ... वर्षा गीत ...।'' सुल्ली की मां फिर कहती है- ''सुल्ली! बरसात में कोई गीत गावे कि पकौड़ी खावे? जा जो तो सुल्ली, तू तो गरमागरम पकौड़ी बना ला।''

जैसे ही बारिश थमती है बड़ा भाई फौरन नायक से कहता है, ''आपके पास छाता भी नहीं है, तुरंत निकल जाइए, वरना ...'' सुल्ली के नायक से मिलने-जुलने का पता जब घरवालों को चलता है तो उसका भाई- ''भरपूर हाथ का एक झन्नाटेदार झापड़ रसीद कर' कहता है, ''अम्मा, कमरे में बंद करो इसे और अच्छी खबर लो इसकी।''

इधर नायक अपनी रंगबाजी से बाज नहीं आता। उसका संकटमोचन मित्र कहता है- ''शरम नहीं आती तुझे? वो वहां बेचारी कुट-पिट रही है ओर तू यहां गुलछर्रे उड़ाने ले आया इसे? चार दिन बाद शादी है तेरी।'' ... नायक ने भड़ाक से दरवाजा बंद कर लिया। एक तरह भाई और दूसरी तरह रंगबाज प्रेमी की करतूत से बेखबर - इन दोनों के बीच नायिका सुल्ली शारीरिक और मानसिक वेदना को झेलती है। कुल मिलाकर कहानी रोचक है। जहां नायक

पुस्तक :
बंदी
लेखिका :
मन्नू भंडारी
प्रकाशक :
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.,
जी 17, जगतपुरी, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठः 375
मूल्यः ₹ 250

अपनी कविता को नायिका से स्वरबद्ध कराकर उसे (गीत) अमरता प्रदान करवाना चाहता है। उसका प्रेम केवल देह तक सीमित है वह विवाहित बंधन में नहीं बंधना चाहता। मित्र के कहने पर विवाह के लिए तैयार हो जाता है पर अपनी रंगीत तबियत से बाज नहीं आता।

सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगति मानवीय विडंबना और पाखंड के दिखावे को लेखिका ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है।

'बंदी' शीर्षक कहानी में लेखिका ने मरने वाले के प्रति 'क्षमा-भाव' को 'मौत का उपहार' कहा है। कहानी का नायक अमित जीवन-भर अपनी मां (सोनल) से नफरत करता रहा। उसके आए हुए पत्रों को बिना पढ़े ही चिन्दियां बनाकर फेंकता रहा। पर चार वर्ष के लंबे अंतराल के बाद जो पत्र आया तो उसे बिना पढ़े रहा नहीं गया। शायद ... चौदह वर्षों में पहली बार उसने मां का पत्र पढ़ा...।

''अमर बेटे,

नौकरी करके तुम बंबई चले गए हो, इसीलिए यह पत्र लिख रही हूं- इस विश्वास के साथ कि कम-से-कम वहां तुम इसे फाड़कर नहीं फेंकोगे एक बार पढ़ोगे जरूर। ...एक बार, बस, एक बार मेरे पास चले आओ। मैं हर दिन तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।''

-मां!

कितना आग्रह है, कितनी मार्मिकता है इस पत्र में। एक संवेदनशील हृदय जरूर ही आहत होगा। एक मां की बेटे के प्रति पुकार। अमित समझ नहीं पा रहा था कि मां को आखिर उसकी क्या जरूरत आ पड़ी। पैसे चाहिए।

आज पत्र पढ़कर उसे न जाने क्यों लगा कि उसे मां के पास जाना चाहिए। उसकी अब तक की मां के प्रति जो धारणा थी, वह पूर्णतया बदल गई। और उसके आंसुओं के रूप में वह निकली। मां को खिलखिलकार हंसते हुए और मां को फूट-फूटकर रोते हुए देखने वाले ये दो चित्र ... क्यों उसकी याद में चिपक गए थे? आज सिवाय पश्चाताप के उसके पास कुछ नहीं था।

एक स्त्री की मार्मिक दशा का चित्रण करने में लेखिका को पूर्ण सफलता मिली है। इस पुरुष-प्रधान समाज की विडंबना है कि स्त्री को ही सहना पड़ता है। उसकी गलती न होते हुए भी।

'मुक्ति' कहानी में मृत्युशैया पर लेटे बाबू जी की सेवा में तत्पर अम्माजी दिन-रात एक पैर पर खड़ी रहती हैं। जिन्हें अपने खान-पान की भी सुध नहीं रहती। बहूं के भोजन के आग्रह पर कहती हैं - ''... कैसी बात करे है छोटी?

मन्नू भंडारी के 'बंदी' कहानी संग्रह में पर्याप्त रोचकता और पठनीयता है। एक बार हाथ में लेने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। भाषा-शैली सीधी, सरल और प्रवाहपूर्ण है। सामाजिक विसंगतियों, स्त्री-जगत के मर्म को छूती हुई मन्नू जी की कलम समस्त नारी-जगत की हर समस्याओं विडंबनाओं, सामाजिक रूढ़ियों-कुरीतियों की असाध्य वीणा को बजाने वाली प्रियंवद सिद्ध होती है।

कित्ते दिनों बाद तो आज ऐसी गहरी नींद आई है इन्हें ... पैर दबाना छोड़ दूंगी तो जाग नहीं जाएंगे? ...तू जो जाने है इनका गुस्सा। ...खाने का क्या है, पेट में पड़ा रहे या टिफिन में, एक ही बात है।''

अम्मा जी में अटूट सेवाभाव देखने को मिलता है। लेकिन यह डर से उपजा है। जिससे 'मुक्ति' अम्मा जी को मृत्योपरांत ही मिल पाती है। 'भय बिनु होत न प्रीत' वाली उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। पुरुषसत्ता किस प्रकार स्त्री पर हावी रहती है।

'विडंबना' शीर्षक कहानी में सामाजिक नैतिक रूप से संवेदनहीन मनुष्य का वर्णन किया गया है। भारत जहां विश्व बंधुत्व की ओर वैश्वीकरण के रूप में अग्रसर हो रहा है। वहीं दूसरी ओर मानवीय और नैतिक मूल्यों का ह्रास तेजी से हो रहा है।

महेश और रमा को उनके पड़ोस के तीसरे नं. के घर में हुई पड़ोसी की मृत्यु तक का नहीं पता। कैसी विडंबना है? आज के परिवेश में व्यक्ति इतना संकीर्ण हो गया है कि उसे अपने पड़ोसी के सुख-दुख की खबर नहीं? मृत्यु जैसे चिरंतन सत्य की भी कोई जानकारी नहीं। जिंदगी जैसे सिमट गई है।

'फांसी' नामक कहानी 'साहित्य और सिनेमा' के अंतसंर्बधों पर प्रकाश डालती है। लेखक को कहानी पर फिल्म बनने से कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। शेखर इस बात को समझौता करने से इंकार करता है कि उसकी कथा में परिवर्तन किया जाए। जब फिल्म निर्माता द्वारा परिवर्तन कर दिया जाता है तो शेखर को मुकदमा लड़ना पड़ता है, आखिर में हार जाता है। इससे वह फर्जे में चला जाता है।

'बंदी' कहानी संग्रह में पर्याप्त रोचकता और पठनीयता है। एक बार हाथ में लेने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। भाषा-शैली सीधी, सरल और प्रवाहपूर्ण है। सामाजिक विसंगतियों, स्त्री-जगत के मर्म को छूती हुई मन्नू जी की कलम समस्त नारी-जगत की हर समस्याओं विडंबनाओं, सामाजिक रूढ़ियों-कुरीतियों की असाध्य वीणा को बजाने वाली प्रियंवद सिद्ध होती है।

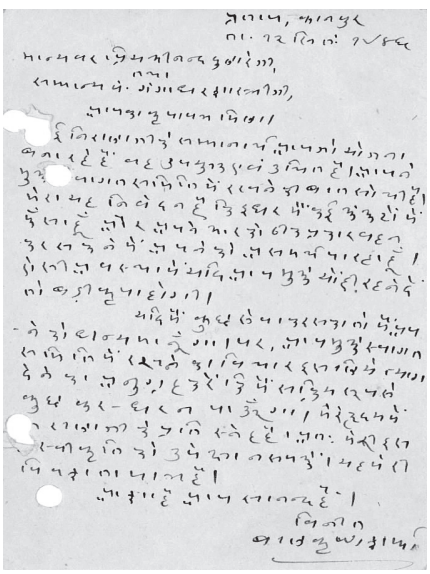

बालकृष्ण शर्मा द्वारा नन्द दुलारे वाजपेयी को लिखा गया पत्र महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय में संरक्षित है।

उपन्यास

निम्नवर्गीय स्त्री जीवन का प्रामाणिक आख्यान

शिवदयाल

साहित्यकार

संपर्क :
ए 1/201, आर.के. विला,
महेश नगर
(बोरिंग रोड पानी टंकी)
पटना-800024 (बिहार)
मो. 9835263930

पिछले लगभग चार-पांच दशकों के कथा लेखन में उषाकिरण जी ने अपनी एक अलग कथा-भाषा अर्जित की है, यह उपन्यास उसकी बानगी है। उनकी भाषा पर मैथिल लोक का गहरा असर है, बिहार में बोली जानेवाली हिंदी संवादों में छलकती रहती है। वें कहीं चमत्कार का प्रयास नहीं करतीं, मानो साधारण मनुष्यों के जीवन की कठोर वास्तविकताओं, विडंबनाओं, और त्रासदियों, साथ ही साथ ही उनसे पार पाने की अदम्य आकांक्षा के प्रति पाठक को संवेद्य बनाना ही उनको एक लेखक के रूप में अभीष्ट है। इसी कारण 'गई झुलनी टूट' एक ऐसा उपन्यास बन पड़ा है जो निम्नवर्गीय स्त्री जीवन के वर्तमान का न केवल प्रामाणिक चित्रण करता है बल्कि कहीं-न-कहीं भविष्य की ओर भी इंगित करता है - खासतौर पर स्त्री-पुरुष संबंधों, विवाह संस्था तथा व्यापक रूप में सामाजिक संरचना की ओर। इस कारण यह एक महत्वपूर्ण एवं सर्वथा पठनीय उपन्यास है, जिसके लिए उपन्यासकार साधुवाद की पात्र हैं।

पुस्तक : गई झुलनी टूट
लेखिका : उषाकिरण खान
प्रकाशक :
किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ: 135
मूल्य: ₹ 270

उषाकिरण खान का सातवां उपन्यास है 'गई झुलनी टूट'। मैथिली में भी उनके इतने ही उपन्यास हैं। उन्होंने विपुल कथा-साहित्य रचा है और आज भी अनवरत सृजनरत हैं। उनकी अथक सृजनशीलता विस्मित करती है। 'भामती' उपन्यास पर उन्हें मैथिली का साहित्य अकादेमी पुरस्कार सहित अनेक महत्वपूर्ण पुरस्कार-सम्मान प्राप्त हुए हैं। वे पद्मश्री भी हैं।

'गई झुलनी टूट' कमलमुखी और घांटो मड़राइन जैसी स्त्रियों की कथा है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में अकेले पड़ते हुए भी अपने दम पर अपना होना साबित करती हैं - कमलमुखी शहर में, जबकि घांटो गांव में। यह भी विचित्र संयोग है कि ये दोनों स्त्रियां एक ही परिवार की हैं। इन दोनों स्त्रियों की दुर्दशा का कारण स्वयं इनके पति हैं। घांटो जब अपनी मरणासन्न माता की सेवा में नैहर में रुकी रहती है तो उसका समर्पित पति जगत अपने भाई की विधवा साली के प्रति आसक्त हो उससे 'समध' कर लेता है, यानी उसे पत्नी मान लेता है। इसी औरत देवकी की संतान है कमल जैसे सुंदर मुखड़े वाली कमलमुखी जिसे जगत के रूप में पुनः पिता की छाया प्राप्त होती है, लेकिन अधिक समय के लिए नहीं। कमलमुखी स्वप्नजीवी किशोरी है जो कमलदह में कमल के फूलों में भौरों के बंद होने की घटना की साक्षी बनना चाहती है, जो कमल की पंखुड़ी की नोंक पर जमे ओसबिंदु को निहारती रहती है। कमलमुखी का कमलदह से जुड़ाव कहीं-न-कहीं एक रूपक के रूप में व्यवहृत हुआ है-स्मृति का रूपक में रूपांतरण - 'इसके मन में एक कसक रह गई, इसने कमल को पूरा खिला हुआ देखा नहीं। उसमें से निकल भागते भेम्ह (भौंरा) को नहीं देखा। गुलाबी पंखुड़ियों की गिरफ्त से निकलकर उड़ता दुष्ट भौंरा कहां देखा?' कमलमुखी को तो आगे जीवन में तपती रेत ही मिलती है जिस पर मीलों चलना होता है। कोई-कोई प्रसंग नखलिस्तान की तरह जरूर आते रहते हैं।

और घांटो का 'उजली घंटी-सी टनटनाती हंसी के कारण' ही यह नामकरण हुआ। मस्त, बेलौस, खुलकर हंसनेवाली स्वस्थ-सुघड़ घांटो का ब्याह खाते-पीते घर के जगत से हुआ जिसके सद्व्यवहार ने घांटो के मन में उसके प्रति अपार विश्वास भर दिया। इसी विश्वास के भरोसे वह एक बार जो अपनी बीमार मां की सेवा-सुश्रुषा के लिए गई तो मां के बार-बार ताकीद करने पर भी कि इतने दिनों तक मर्द-मानुष को अकेले छोड़ना मुनासिब नहीं, उसे उस हालत में छोड़कर ससुराल नहीं जाती। उसे तो अपनी जेठानी पर भी पूरा भरोसा रहता है कि वह उसकी अनुपस्थिति में उसके जगत को और घर-बार को अच्छी तरह संभाल लेगी। आखिर तो उस घर में कदम रखते ही उसने कामकाज संभालने (जिसमें एक भैंस पालना भी शामिल है) के साथ ही अपनी जेठानी के भी साज-संवार में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। उसके प्रति यह अपनत्व या बहनापा इस सीमा तक गया कि जेठानी की गर्भवती विधवा बहन देवकी को भी मां सरीखी बहन की देखरेख की जरूरत के मद्देनजर वहीं, यानी अपने घर में ही बुलवा लिया और खुद मां को देखने नैहर चली आई। दगा उसके साथ जेठानी ने ही की। अपनी विधवा, सद्यप्रसूता बहन देवकी का जीवन संवारने के लिए अपनी छोटी बहन जैसी, सेवाभाव वाली गोतनी (तब लंबे समय से अनुपस्थित, माता की सेवा में लीन और समर्पित) घांटो का जीवन ही दांव पर लगा दिया। उसने देवर जगत को देवकी के साथ 'समध'

करने पर राजी करा लिया। जब यह खबर घांटो को मिली तो वह इस पर विश्वास न कर सकी, उसे जगत से इस धोखे की उम्मीद नहीं थी। जगत उसे वापस ले जाने के लिए फिर नहीं आया। मां के देहांत के पश्चात भौजाई के तानों से आहत घांटो का बयाह (पुनर्विवाह!) एक संपन्न लेकिन बाल-बच्चेदार, उससे उम्र में बहुत बड़े बल्कि दूने, इलाके के प्रतिष्ठित व्यक्ति जोखन मरड़ से करा दिया गया। उसका नया जीवन प्रारंभ हुआ।

घांटो को संतान नहीं हुई, न जगत से न जोखन से लेकिन उसने सौत की संतानों के प्रति एक जिम्मेदार मां का दायित्व निभाया। इस दायित्व-निर्वहन में घांटो के अंदर कुछ बदलता चला गया। बैल खरीदकर लौटे जोखन मरड़ कोई गंभीर व्याधि लेकर चले आए और थोड़े ही दिनों में परलोक सिधार गए। इसके बाद की कथा घांटो के घांटो मड़राइन बनने की कथा है - दबंग और दुर्दमनीय स्त्री जो कि अपनी बहू कमलमुखी के प्रति अतिरिक्त रूप से निष्ठुर है। लेकिन जो सरपंच बनने के बाद अपना राजनीतिक जीवन शुरू करती है।

दूसरी ओर मौसी के घर और 'नए पिता' जगत की छाया में पल रही कमल जैसी सुंदर कमलमुखी को वयःसंधि पार करते ही उसके चाचा, यानी उसके वास्तविक पिता के सगे भाई अपना कर्तव्य जानकर उसे अपने साथ लिवा जाते हैं। चाचा-चाची के रहन-सहन से उसे अंदाजा हो जाता है कि वह एक संपन्न परिवार की बेटी है। उसके पिता की सरकारी मास्टर की नौकरी लग चुकी थी, लेकिन वे अचानक कालकवलित हो गए। उसे यह भी पता लग जाता है कि उसकी चाची यों तो मीठा बोलती है लेकिन उसकी दादी और स्वयं उसकी मां देवकी के गहने उसने हथिया लिए हैं। कमलमुखी अपने घर, यानी चाचा के यहां अधिक समय नहीं बिता पाती। उसका विवाह एक अच्छे खाते-पीते प्रभावशाली परिवार में, जोखन मरड़ के इकलौते पुत्र रंजन से कर दिया जाता है जो विधुर है और जिसके एक बच्चा भी है।

रंजन कुल मिलाकर एक शरीफ लड़का है लेकिन वह अपनी सौतेली मां, घांटो की दबंगई से परेशान है। इसके सामने उसका मुंह नहीं खुलता, वह एक दब्बू किस्म का पति, बल्कि इंसान के रूप में सामने आता है। इधर किसी प्रकार घांटो को पता चल जाता है कि जिस स्त्री ने उसका जीवन बर्बाद कर दिया, कमलमुखी उसी देवकी की बेटी है। अब कमलमुखी के दुर्दिन शुरू होते हैं। घांटो देवकी का बदला उसकी बेटी और अपनी बहू से लेना शुरू करती है। आए-दिन की मारपीट और झगड़ा-झंझट से आजिज आकर रंजन कलकत्ता नौकरी ढूंढ़ने चला जाता है। इसके बाद तो कमलमुखी की फजीहत और बढ़ जाती

उषाकिरण खान का सातवां उपन्यास है 'गई झुलनी टूट'। मैथिली में भी उनके इतने ही उपन्यास हैं। उन्होंने विपुल कथा-साहित्य रचा है और आज भी अनवरत सृजनरत हैं। उनकी अथक सृजनशीलता विस्मित करती है। 'भामती' उपन्यास पर उन्हें मैथिली का साहित्य अकादेमी पुरस्कार सहित अनेक महत्वपूर्ण पुरस्कार-सम्मान प्राप्त हुए हैं। वे पद्मश्री भी हैं।

है। उसे घांटो जब एक दिन घर से निकाल देती है तो वह कैसे-कैसे करके गांव के ही एक बुजुर्ग की मदद से अपने पति रंजन के पास पहुंच जाती है। ये कुछ दिन उसके जीवन के स्वर्णिम दिन हैं। वह कलकत्ते के रंग में ढलना शुरू करती है, गार्ड की नौकरी कर रहे अपने पति के साथ। फ्लैट की मेमसाहबों से उसकी निकटता होती है और उनके मार्फत शहरी जीवन और उसके तौर-तरीकों से उसका परिचय बनता है।

कुछ दिन साथ रहकर रंजन और कमलमुखी गांव लौटना तय करते हैं। लेकिन ऐन वक्त पर मालिक का पैर टूटने के कारण रंजन गांव नहीं लौट पाता। उन्हें इस तकलीफ में छोड़ना उसे सही नहीं लगता। लिहाजा कमलमुखी रंजन के बिना ही गांव लौटती है। इसका नतीजा अच्छा नहीं निकलता। मारपीट के बाद उसे घांटो घर से निकाल देती है। अपने दोनों बच्चों को साथ लिए कमलमुखी पटना की बस पर सवार हो जाती है। उसका अपने परिवेश से नाता सदा के लिए टूट जाता है। जीवन में उसकी फिर से न घांटो से भेंट हो पाती है - न ही अपने पति से। बीच में एक बार घांटो उसे खोजती आती भी है तो अपने पोते को जबरदस्ती अपने साथ जीप में बैठाकर लिए जाती है। रंजन तो कभी उसकी सुध ही नहीं लेता। कमलमुखी का पटना में कामवाली दाई के रूप में नया जीवन शुरू होता है-सामाजिक राजनीतिक दृष्टि से सशक्त एवं प्रभावी, एक संपन्न और इलाके के प्रभावशाली परिवार की बहू अपने ही परिवार से विस्थापित होकर पटना में जूठन मांजने और झाड़ू-पोंछा करने वाली दाई या 'मेड' बन जाती है। इस विस्थापन का कारण प्रथमतः बाह्य कारक या परिस्थितियां नहीं हैं। स्वयं उसकी (सौतेली) सास और उसका दब्बू और अनुत्तरदायी पति है। यह स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के शोषण-उत्पीड़न की कथा भी है।

कमलमुखी की मां देवकी ने पति खोने के पश्चात अपनी ही बड़ी बहन के विवाहित देवर से 'समध' कर लिया था - एक सुरक्षित और निश्चिंत जीवन की लालसा में। पटना में घरों में काम करती और बच्चों को पालती कमलमुखी को भी सुरक्षा की जरूरत होती है। यह जरूरत सामाजिक तो है ही, दैहिक भी है। आखिर वह एक युवा स्त्री है और उसके सामने पूरा जीवन पड़ा है। छोटे-मोटे कामों में हाथ बटाने वाले आटा चक्की के मालिक जंगी सिंह (गंगा पार के बाबू साहब) के साथ उसकी इस सीमा तक निकटता बनती है कि वह उसके दो बच्चों की मां भी बन जाती है। दोनों के बीच विवाह की कोई रस्म नहीं होती, लेकिन मुहल्ले में यह रिश्ता मान्य हो जाता है। दो पिताओं से उत्पन्न चारों बच्चे भी एक-दूसरे को स्वीकार कर लेते हैं। एक पांचवां बच्चा (मुन्ना मंडल) भी है जो कमलमुखी की सौत से जन्मा है और जो बिलकुल भिन्न परिवेश में रहता है। हकीकत में कमलमुखी के तीन बच्चे ही उसके साथ हैं, एक लड़के (श्रीकांत) को उसकी दादी एक तरह से उठा ले जाती है, जो बाद में चलकर कलकत्ते में बड़े पद पर पहुंचता है और जो अपनी माता और भाई-बहनों को खोज निकालने के लिए व्याकुल ही नहीं, कृतसंकल्प है।

इस प्रकार 'गई झूलनी टूट' में दो स्त्रियों की समांतर कथाएं चलती हैं - एक ही परिवार की दो स्त्रियां! एक, जो एक संपन्न मध्य जातीय परिवार की पतिविहीन स्त्री है जिसे परिस्थितियां दबंग और मुंहजोर बना देती हैं, जो ग्रामीण शक्ति संरचना में आए बदलाव से प्रभावित होती है, बल्कि स्वयं उसका प्रतीक बन जाती है और स्थानीय राजनीति

में एक मुकाम हासिल करती है। इसमें इलाके में उसकी जाति का संख्या बल, जोत का बढ़ता क्षेत्रफल और सूद पर कर्ज देने आदि जैसे धंधों से उपरी कमाई की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह घांटी है जो कोसी क्षेत्र में महिला सशक्तीकरण का प्रतीक पात्र बन गई है। सत्ता हासिल करने और उसे कायम रखने की उसमें वैसी ही लालसा है जो किसी पुरुष में हो सकती है। इसके लिए वह रात्रि पाठशाला में सबीना मैडम से अक्षरज्ञान भी सीख सकती है तो इलाके के लोगों को प्रभावित करने के लिए शतचंडी यज्ञ भी करा सकती है। घांटो स्वयं कबीरपंथी होकर यज्ञ कराती है और कबीरपंथ के मठों-महंतों की नाराजगी दूर करने के लिए 'पंद्रह सौ खाए-अघाए कंठीधारियों को पूड़ी-बुनिया का भोज' भी दे सकती है। वह गांधीवादी रघुनी यादव के सामने स्वीकार करती है- ''साहेब बनगी बाबा, हम पढ़े-गुने नहीं हैं, देस-दुनिया नहीं देखे हैं, अकेली औरत हैं, सचमुच कुछ नहीं समझते।'' कुछ लड़कों द्वारा बरगलाए जाने पर वह रिवॉल्वर के लाइसेंस के लिए भी आवेदन देती है, गोकि इंस्पेक्टर और रघुनी यादव उसे समझा-बुझा कर वापस भेज देते हैं। एक और बात, घांटो के जिम्मे दो बच्चे हैं, एक रंजन के पिछले विवाह से जन्मा मुन्ना मंडल और दूसरा कमलमुखी का बेटा श्रीकांत जिसे वह पटना से जबरन उठा लाई थी। लेकिन इन दोनों की परवरिश वह अच्छी करती है। मुन्ना मंडल उसकी राजनीतिक विरासत को आगे बढ़ाता है और एम.एल.ए. का चुनाव लड़ने की तैयारी करता है। दूसरा, श्रीकांत भी अच्छी पढ़ाई करके कलकत्ते में मैनेजर लग जाता है। उसके चरित्र का यह पक्ष उज्ज्वल है और मजलूम औरतों के लिए मिसाल है। वास्तव में घांटो 'स्त्रीवादी' सांचे में ढाले गए स्त्रीपात्र से कहीं अधिक मजबूत और जमीनी है। वह वर्जनाशील मन वाली स्त्री नहीं है, उसमें पर्याप्त आत्मसम्मान भी है। जगत उसे बुलाता नहीं तो वह भी उसके पास नहीं जाती है। वही जगत जब एक बार कमलमुखी का हाल लेने उसके पास सहमा-सकुचाया जाता है तो वह उसका पानी तो उतारती ही है, उसे भोगने में भी उसे कोई संकोच नहीं होता। वह इतना खुलती है कि जगत को स्वीकार करना पड़ता है कि ऐसे उद्दाम एवं उद्वेगपूर्ण साथ के लिए वह तरस गया था। यहां पितृसत्ता की बहस बेमानी हो जाती है।

अब यह कितनी बड़ी विडंबना है जिसे उपन्यासकार ने खूबी के साथ चित्रित किया है कि घांटो जैसी सशक्त स्त्री मात्र अपनी नारीसुलभ डाह अथवा द्वेष के कारण अपनी ही कुल वधू के अपनी जड़ से विस्थापन, निर्वासन एवं निःसशक्तीकरण का कारण बन जाती है। कमलमुखी का प्रसंग आते ही घांटो का चरित्र एक खलपात्र में बदल जाता है। उसके जीवन के दुखों, अभावों और

'गई झुलनी टूट' कमलमुखी और घांटो मड़राइन जैसी स्त्रियों की कथा है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में अकेले पड़ते हुए भी अपने दम पर अपना होना साबित करती हैं - कमलमुखी शहर में, जबकि घांटो गांव में। यह भी विचित्र संयोग है कि ये दोनों स्त्रियां एक ही परिवार की हैं। इन दोनों स्त्रियों की दुर्दशा का कारण स्वयं इनके पति हैं।

वंचनाओं का कारण वास्तव में घांटो ही है जो उसे शक्तिहीन, श्रीहीन करके शहर में जूठा मांजने पर मजबूर करती है। गौर से देखें तो कमलमुखी पात्र में मां का संघर्ष ज्यादा है। उसे जो करना है, बच्चों के लिए करना है। यह ठीक है कि जंगी सिंह उसकी दैहिक जरूरतों की पूर्ति करता है लेकिन वास्तव में उसकी जरूरत परिवार एवं बच्चों के लिए एक आड़ के रूप में अधिक है। भगेडू जंगी सिंह भी उसकी गोद में दो और बच्चे सौंप जाता है, जबकि उसके अपने बच्चों के विकास में सायास बाधक भी बनता है। यह भी विरल संयोग है कि कमलमुखी के जीवन में दो पुरुष आए - एक दब्बू, डरपोक और दूसरा छलिया, भगेडू। दूसरा, यानी जंगी सिंह तो बाकायदा शादीशुदा, बाल बच्चेदार आदमी था जिसने कमलमुखी के अकेलेपन और कमजोरी का फायदा उठाया और एक दिन अचानक गायब हो गया। पाठक को उससे भेंट उपन्यास के अंत में तब होती है जब उसका बेटा छोटकू अपने पिता से मिलने की जिद ठान लेता है और कमलमुखी को लेकर उसके गांव जाता है। मरणासन्न जंगी सिंह उसे तुरंत वहां से निकल भागने की सलाह देता है। पाठक पर यह विश्वास जमता है कि जंगी सिंह को अपने किए का भारी पछतावा है, और कि उसे उसके किए की सजा मिल गई। पछतावा तो मरते समय घांटो को भी बहुत था जब वह मृत्यु की देहरी पर खड़ी कमलमुखी से एक बार माफी मांग लेना चाहती है।

घांटो और कमलमुखी के चरित्र की तुलना करें तो कमलमुखी मन में करुणा उपजानेवाला पात्र ही बनकर रह जाती है। उसके रोजमर्रा की जद्दोजहद, जीवन संघर्ष भी मन में करुणा ही उपजाते हैं। पांच बच्चों की माता होना, शायद इसका बड़ा कारण है। लेकिन बच्चों को लेकर अकेले ही पटना की बस पकड़ लेने जैसे बहुत कम प्रसंग उसके साथ जुड़े हैं। उसके सामने जो कुछ आता है, वह स्वीकार करती चलती है, तमक कर इनकार नहीं करती, न घर-परिवार में सास-पति के सामने, न ही कामवाली की अपनी भूमिका में। तब भी यह मानना पड़ेगा कि उस जैसी जीवन स्थितियों वाली अधिकतर स्त्रियों की यही स्थिति है। उपन्यासकार ने इसमें अनायास साहस-दुस्साहस नहीं जोड़ा है। अपने-अपने परिवेशों और जीवन स्थितियों में उषाकिरण खान ने घांटो और कमलमुखी के रूप में वास्तव में प्रतिनिधि चरित्रों को गढ़ा है।

यह उपन्यास व्यापक रूप में उत्तरी बिहार विशेषकर मिथिलांचल के पिछड़े अथवा अति पिछड़े समाज की कथा कहता है। पूरे उपन्यास में एक भी उच्चवर्णीय पात्र नहीं जिसकी कथा में कोई विशेष या प्रभावी भूमिका हो (अपवाद जंगी सिंह जो सचमुच बाबूसाहेब, यानी राजपूत ही है, पूरी तरह से स्पष्ट नहीं)। यहां तक कि गांव में जोखन मड़र ने एक शिक्षक को बसाया है, वह भी सीताराम मास्टर नाऊ, जाति का है। मास्टर पहले जोखन मड़र, बाद में घांटो मड़राइन तथा रंजन और उसकी संतानों की शैक्षिक देखरेख करता है, हिसाब-किताब में मदद करता है और अत्यंत विश्वस्त व्यक्ति है। मड़र परिवार कुर्मी परिवार है जो इलाके की मजबूत मध्य जाति है। जोत में और राजनीति में भी इलाके में वह खासा दखल रखती है। अत्यंत अनुभवी और दृष्टिसंपन्न उपन्यासकार ने प्रामाणिक ढंग से यह दर्शाया है कि गांव की राजनीति में ओबीसी यानी मध्य जातियों का वर्चस्व है तथा अति पिछड़ों की उपेक्षा है जो संख्या में तथा जोत में (भू-संपत्ति) में उनके मुकाबले बहुत पीछे हैं। कुम्हार की बहू को सरपंची का दूसरा कार्यकाल इसलिए नहीं मिल पाता कि उससे पिछड़ा समाज नाराज हो जाता है। स्थानीय राजनीति में छल-कपट और दूरभिसंधियां हैं, बाहुबल, हिंसा और अपराध का बोलबाला है जिसमें छोटे या सीमांत सामाजिक समूह स्वमेव हाशिए पर चले जाते हैं। मध्य जातियां उच्च जातियों जैसा बनना चाहती हैं, उनकी जीवन शैली और व्यवहार प्रतिमान अपनाने की उनमें जबरदस्त लालसा है। जोखन मड़र जब अपने दालान का कुछ रंग-रोगन कराते हैं और बेटी के ब्याह के मौके पर कुछ फर्नीचर बनवाते हैं तो उसी में से एक टेबुल और कुर्सी निकाल, बाद में पटरा वाला बेंच भी बनवा लेते हैं। बेंच पर जब गांव के लोग आकर बैठते तो मड़र आनंद में भरकर पूछते-''ऐ सीताराम मास्टर, आप तो बरहमन-कायथ के नामी गांव के बशिंदा हैं, बताइए, अब हम क्या कम हैं उनसे? आंय?'' सीताराम हंसकर हामी भरता है।

यह उपन्यास इसी समाज की स्त्रियों की कथा कहता है। केंद्र में स्त्रियां ही हैं जो आम मध्यवर्गीय सामाजिक नैतिकता और यौन-आग्रहों को चुनौती

देती हैं। इनके लिए विवाह जन्म-जन्मांतर का बंधन नहीं, एक सुविधा, सुभीते का बंधन है, सहूलियत है। 'समध' एक प्रथा के रूप में मान्य है जो विवाह संस्था से बाहर निकलने की सहूलियत देता है। पति-पत्नी लंबे समय से अलग हों, या न भी हों तो अन्य स्त्री-पुरुष से संबंध स्थापित कर सकते हैं और सगे-संबंधी इसकी खिलाफत की बजाए इसके लिए सुविधा प्रदायक की भूमिका में आ जाते हैं। ऐसे में विवाह में 'प्रतिबद्धता' का तत्व गौण रह जाता है। गहराई से देखें तो घांटो और कमलमुखी अपनी त्रासदी का कारण भले एक-दूसरे को मानती रही हों, असल कारण तो समध की (कु)प्रथा है। जिसमें खामख्वाह एक अत्यंत सामान्य-सी अनुपस्थिति के चलते विवाहिता पत्नी के रहते अन्य स्त्री के साथ संबंध को मान्यता दे दी जाती है। जगत की खंडित प्रतिबद्धता घांटो के जीवन का अभिशाप बन जाती है, वह जीवन भर अतृप्त रह जाती है, वह भी बिना अपराध! अब यह जो स्थिति है, उसमें यौन शुचिता जैसी कोई बात कहां रह जाती है - जो शहरी स्त्री-विमर्श के केंद्र में हुआ करती है। इस पैमाने पर तो इटहरी जैसी गांव की औरतें पटना-दिल्ली की पढ़ी-लिखी औरतों से ज्यादा आजाद मानी जानी चाहिएं। इस दृष्टि से देखें तो कमलमुखी का पति भले डरपोक और गैर-जिम्मेदार हो, वह पत्नी वियोग में होते हुए भी विवाह संस्था के बाहर नहीं जाता, कमलमुखी के प्रति जीवनभर एकनिष्ठ बना रहता है। उसकी यह एकनिष्ठता कमलमुखी को उससे मिलने से रोक देती है - क्या मुंह लेकर उसके पास जाए जो जीवन भर अकेले रह गया, वह तो दूसरे पुरुष के बच्चों की मां तक बन गई। यहां रंजन उपन्यास के अंत तक आते-आते पाठकों के दिल में अपनी जगह बनाने में कामयाब हो ही जाता है। जगत के साथ ऐसा नहीं हो पाता, भले वह पश्चाताप के आंसू बहाता अपने दिन गिन रहा हो।

उपन्यास की यह एक विशेषता है कि इसमें बहुत मजबूत पुरुष चरित्र नहीं है, शायद इससे स्त्री-चरित्र पूरी तरह से निखर नहीं पाते, हालांकि यह आवश्यक नहीं। सकारात्मक पुरुष चरित्र उभरने से रह गए, जैसे श्रीकांत। मां और भाई-बहनों को फिर से पाने की उसकी बेकली की ओर इशारा है लेकिन उसकी बदली हुई वर्गीय स्थिति के मद्देनजर उसकी संवेदना की परख अलग-अलग परिस्थितियों में की जा सकती थी। रंजन कैसे पत्नी और बच्चों के प्रति निस्पृह बना रह गया, बावजूद इसके कि उसने किसी स्त्री का साथ नहीं किया-औपचारिक-अनौपचारिक कुछ भी नहीं। रंजन के चरित्र को भी उभारने की गुंजाइश थी। उसी प्रकार जंगी सिंह का बेटा छोटकू सिंह काम की खोज में मुंबई रवाना होता है। वहां से अपने ठेकेदार की लड़की को ही भगा लाता है। वह अपने मूल

उपन्यास का शिल्प सादा है, एकरेखीय ढंग से कहानी खुद आगे बढ़ती है। कहीं-कहीं फ्लैश बैक का इस्तेमाल हुआ है लेकिन उसकी अवधि प्रायः छोटी है। कथा तृतीय पुरुष में कही गई है, इससे उपन्यासकार के पास विभिन्न चरित्रों-पात्रों को खोलने, उन्हें कहने की सुविधा है। संवाद का अच्छा, संतुलित उपयोग हुआ है, केवल कथन ही कथन की एकरसता नहीं।

यानी पिता की तलाश में मां को लेकर जाता है और किसी तरह जान बचाकर लौटता है। इसके चरित्र के विस्तार की भी संभावना बन सकती थी लेकिन उसके लौटने के साथ ही उपन्यास समाप्त हो जाता है।

असल में 'गई झूलनी टूट' का कथ्य एक व्यापक फलक अपने में समेटे है लेकिन उस अनुपात में कथानक का विस्तार नहीं हो पाया है। यह उपन्यास छोटी-छोटी घटनाओं और संवादों के माध्यम से बहुत कुछ कहता है। समाज के उस तबके की जीवन-स्थितियों, उनकी आशाओं-अकांक्षाओं के बारे में गहरे, अर्थपूर्ण संकेत करता है। बिहारी समाज के निचले तबके के राजनीतिकरण एवं उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को भी अभिव्यक्त करता है। इस प्रक्रिया में पंचायती राज संस्था की भूमिका को भी रेखांकित करता है जिसमें औरतों को पहले तैंतीस और बाद में पचास प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। इस स्थिति से परंपरागत सामाजिक संरचना बदल चुकी है, ऐसे में विवाह जैसी महत्वपूर्ण संस्था का क्या हश्र होगा, कहीं न कहीं उपन्यासकार इसे लेकर चिंतित है। लेकिन इस विषय को और खोला जाता तो उपन्यास के कथ्य में और व्यापकता आती और इसका आकार भी व्यापक होता।

उषाकिरण खान जिस क्षेत्र की कथा कह रही हैं, उसके रेशे-रेशे से वाकिफ हैं। चाहे वह कोसी अंचल का भूपटल हो, भाषा हो, परंपराएं और प्रथाएं हों, उनसे कुछ भी छुपा नहीं हैं। करवट बदलती कोसी, उसकी गाद से बनी नई जमीन, कासवन, मिट्टी, झाड़-वनस्पति, फसलों, फल-फूल और जीवजंतु - जगह-जगह इनका जीवंत चित्रण हुआ है। इससे रस-सृष्टि होती रहती है और कथानक को भी मजबूती मिलती है। पूरे मिथिलांचल का लोकजीवन ही नहीं पटना जैसे शहर के उन मुहल्लों की जीवनस्थितियां भी उपन्यास में प्राणवंत रूप में दर्ज हुई हैं जहां तक हमारी दृष्टि नहीं जा पाती, या जानबूझ कर जिन्हें हम नजरों से ओझल किए रहते हैं। साहित्यिक पुस्तकों में भूमिका का चलन फिर से शुरू हुआ है जो कई मायनों में अच्छा भी है। इस पुस्तक की भूमिका में उषाकिरण जी दावा करती हैः ...नागार्जुन और रेणुजी ने उन अस्सी प्रतिशत औरतों पर लिखा। मैंने उनपर इसलिए लिखा कि मैं उनके बीच की हूं। उनके अलग कष्ट हैं। कोई वर्जना नहीं है परंतु अपार कष्ट है जो मात्र स्त्रीजनित है। अक्सर उनके पुरुष पूरब-पश्चिम कमाने चले जाते हैं, तब परिवार के वरिष्ठजनों का अत्याचार सहना पड़ता है। देह की शुचिता की कोई कुंठा नहीं परंतु कई बार बहकावे में आ जाती हैं। आर्थिक परेशानियां इन्हें विस्थापित करने लगती हैं। वे शहर आकर क्या कर सकती हैं मजदूरी के सिवा? उनसे उनका घर, जमीन सब छिन जाता है। वे विस्थापित और चेहराविहीन हो जाती हैं ...''

तो ऐसी ही अपनी जमीन, अपने गांव-समाज से विस्थापित स्त्रियों की कथा है 'गई झुलनी टूट' जो 'सब कुछ छूट जाने के बाद भी अपना निर्माण खुद करने का माद्दा रखती हैं।'

उपन्यास का शिल्प सादा है, एकरेखीय ढंग से कहानी खुद आगे बढ़ती है। कहीं-कहीं फ्लैश बैक का इस्तेमाल हुआ है लेकिन उसकी अवधि प्रायः छोटी है। कथा तृतीय पुरुष में कही गई है, इससे उपन्यासकार के पास विभिन्न चरित्रों-पात्रों को खोलने, उन्हें कहने की सुविधा है। संवाद का अच्छा, संतुलित उपयोग हुआ है, केवल कथन ही कथन की एकरसता नहीं। पिछले लगभग चार-पांच दशकों के कथा लेखन में उषाकिरण जी ने अपनी एक अलग कथा-भाषा अर्जित की है, यह उपन्यास उसकी बानगी है। उनकी भाषा पर मैथिल लोक का गहरा असर है, बिहार में बोली जानेवाली हिंदी संवादों में छलकती रहती है। वे कहीं चमत्कार का प्रयास नहीं करतीं, मानो साधारण मनुष्यों के जीवन की कठोर वास्तविकताओं, विडंबनाओं, और त्रासदियों, साथ ही साथ ही उनसे पार पाने की अदम्य आकांक्षा के प्रति पाठक को संवेद्य बनाना ही उनको एक लेखक के रूप में अभीष्ट है। इसी कारण 'गई झुलनी टूट' एक ऐसा उपन्यास बन पड़ा है जो निम्नवर्गीय स्त्री जीवन के वर्तमान का न केवल प्रामाणिक चित्रण करता है बल्कि कहीं-न-कहीं भविष्य की ओर भी इंगित करता है - खासतौर पर स्त्री-पुरुष संबंधों, विवाह संस्था तथा व्यापक रूप में सामाजिक संरचना की ओर। इस कारण यह एक महत्वपूर्ण एवं सर्वथा पठनीय उपन्यास है, जिसके लिए उपन्यासकार साधुवाद की पात्र हैं।

कविता

प्रकृति की स्वाधीनता का उत्सव रचती कविताएं

मनोज कुमार पांडेय

कथाकार

संपर्क :
हिंदी समय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 8275409685

हेमंत देवलेकर के दूसरे कविता संग्रह 'गुल मकई' में एकदम आज और अभी की कविताएं हैं। इसके बावजूद इनमें वह उत्सुक अचरज या आदिम सुख दुख बचा हुआ है जिनके बीच से कविता की यह विशाल नदी प्रकट हुई थी। इसीलिए इन कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि जैसे यह किसी बच्चे द्वारा लिखी गई कविताएं हों जो अपने आसपास की दुनिया को पहली पहली बार देख रहा है और अपने एकदम ताजा और अछूते अनुभवों को अपनी कविता में दर्ज करता जा रहा है। कभी इंप्रेशन के रूप में, कभी सवाल के रूप में तो कभी अपने आप से ही की गई बातचीत के रूप में जिसकी तुलना भौरों के गुंजार या कि तितलियों की उड़ान से की जा सकती है।

कविता मनुष्यता की सबसे पुरानी उपलब्धियों में से एक है। दुनिया की सबसे पुरानी किताबें कविता में लिखी गईं। ज्यादातर धर्मग्रंथों ने अपनी बात कहने के लिए कविता का सहारा लिया। प्रेम, प्रकृति और ईश्वर को समझने-बूझने की कोशिशें कविता में ही संभव हुईं। यही नहीं आगे चलकर तमाम सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक बहसों का बोझ भी कविता ने ही उठाया। शायद ही ऐसी कोई मानवीय उपलब्धि बची हो जिसे कविता के भीतर जगह न मिली हो। इस तरह से कविता जहां एक तरफ समृद्ध होती गई और उसके भीतरी भूगोल को अपरिमित विस्तार मिलता गया तो दूसरी तरफ ज्यादातर कवियों के यहां वह आदिम उत्सुकता, अचरज, उल्लास या सवाल गायब होते गए जिन्होंने पहलेपहल कविता को संभव बनाया था।

हेमंत देवलेकर के दूसरे कविता संग्रह 'गुल मकई' में एकदम आज और अभी की कविताएं हैं। इसके बावजूद इनमें वह उत्सुक अचरज या आदिम सुख दुख बचा हुआ है जिनके बीच से कविता की यह विशाल नदी प्रकट हुई थी। इसीलिए इन कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि जैसे यह किसी बच्चे द्वारा लिखी गई कविताएं हों जो अपने आसपास की दुनिया को पहली पहली बार देख रहा है और अपने एकदम ताजा और अछूते अनुभवों को अपनी कविता में दर्ज करता जा रहा है। कभी इंप्रेशन के रूप में, कभी सवाल के रूप में तो कभी अपने आप से ही की गई बातचीत के रूप में जिसकी तुलना भौरों के गुंजार या कि तितलियों की उड़ान से की जा सकती है। इसीलिए बड़े-बड़े सवालों के सामने भी यह कविताएं अपनी सहजता नहीं खोती हैं।

ये कविताएं प्रकृति की गोद में झूला झूलती हैं। बहुत कम कवि होंगे जिनकी कविताओं में प्रकृति इतने ही अनायास रूप से उतर आती होगी जैसे आसमान से बारिश उतरती है। यह अलग बात है कि हेमंत की कविता इसके आगे से अपनी बात शुरू करती है-'बसंत की भाप हैं बादल//बारिश एक दृष्टिभ्रम है/सिर्फ पृथ्वी देख पाती/आसमान से वनस्पतियों का उतरना//बूंदों में कितने भिन्न/और असंख्य बीज/मिट्टी की इच्छा और अनिच्छा से भरपूर//मिट्टी के हर कण पर/लहराता है हरा परचम.../स्वाधीनता का उत्सव है बारिश।' (बारिश - एक) स्वाधीनता के इस उत्सव को वह अपनी दूसरी कविता में नए सिरे से मनाया जाता हुआ देखते हैं - 'रिमझिम बारिश हो रही है/जैसे आसमान से झर रहा है आटा//मिट्टी के रोम रोम : चींटियों के असंख्य अकुलाए हुए मुंह...' (बारिश - दो)

इसी तरह से उनकी अनेक कविताएं हैं जिनमें प्रकृति इतने नवीन और अद्भुत रूपों में अपने को प्रकट करती है कि कल्पना में उन रूपों के दृश्य बनने लगते हैं और हम कवि की आंखों से उस दृश्य को देखने के बावजूद अपनी तरफ से न जाने कितना कुछ जोड़ते चले जाते हैं। इन अर्थों में हेमंत की कविता खुद प्रकृति का हिस्सा बन जाती है और अपने स्वाधीनता के उत्सव में अनायास ही पाठकों को भी शामिल कर लेती है। इसके बाद तो यह कविताएं जैसे एक जादू में बदल जाती हैं। इस जादू के भीतर हम देखते हैं कि - 'तितली के होंठों में दबे हैं/दुनिया के सबसे सुंदर प्रेम-पत्र//तितली एक उड़ता हुआ फूल है//हंसी किसी फूल की/उड़कर जाती है/एक उदास फूल के पास//उड़कर जाता है मन एक फूल का/एक फूल का स्वप्न/उतरता है किसी फूल के स्वप्न में//दो फूलों के बीच का समय/कल्पना है एक नए संसार की...।' (परागण)।

हेमंत की कविताओं को पढ़ते हुए नए संसार की यह कल्पना बार बार आंखों में उतर आती है। 'भारत भवन में अगस्त का प्रवेश', 'रात में बोट क्लब', 'जुलाई', 'झील', 'मार्च', 'गाय की घंटी', 'इस दोपहर में', 'छायागीत', 'मुंहासे', 'अगस्त', 'पहाड़ की चोटी से', 'पौष', 'पानी आजीवन यात्री है', 'एक किरण धूप अचानक', 'छायाएं', 'बाणगंगा की घाटी', 'दिसंबर', 'रात पाली', 'रंगों का आषाढ़', 'शाम अगस्त की' जैसी कविताओं को पढ़ना प्रकृति के नए नए अर्थों के जादू से भर जाना है। यह जादू कहीं बाहर से नहीं आता बल्कि हमारे भीतर से ही प्रकट होता है। ये कविताएं थोड़ी दूर तक अंगुली पकड़कर रास्ता

पुस्तक : गुल मकई
लेखिका : हेमंत देवलेकर
प्रकाशक :
बोधि प्रकाशन, जयपुर
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ: 116
मूल्य: ₹ 120

दिखाती हैं। यह जरूरी काम करने के बाद वे पाठक को छोड़कर पीछे हट जाती हैं। इतना ही काम है उनका, जैसा कि अपनी कविता 'परागण' में हेमंत लिखते हैं - 'तितली की तरह/सिरजने की उदात्तता भी होनी चाहिए/एक संवदिया में।'

इन कविताओं की एक खूबी यह भी है कि यह मुकम्मल दृश्य बल्कि ज्यादातर तो गतिशील दृश्यों की शृंखला ही रच डालती हैं। ये जैसे ही भीतर जाती हैं वैसे ही इनके बिंब दृश्यों में बदलने लगते हैं। 'एक किरण धूप अचानक' जैसी कविताएं पढ़ते हुए लगता है कि वे बहुत सारी पेंटिंगों के माध्यम से दिखाया जा रहा कोई दृश्य हों या कि प्रकृति के मंच पर खेली जा रही कोई रंगारंग प्रस्तुति। यहां रंग, दृश्य, धूप, छाया, बारिश, छत, कपड़े, रजाई सब जैसे किसी नाटक के चरित्रों में बदल जाते हैं और तत्परता से अपनी अपनी भूमिकाओं को पूरी नाटकीयता के साथ जीने लगते हैं। यह दृश्यमयता उनकी इन कविताओं में बार बार प्रकट होती है और पाठक के भीतर के रसायनों को भी रंगों और दृश्यों में बदल देती है।

यही नहीं, संग्रह की अनेक कविताओं में प्रकृति और मनुष्य का भेद ही समाप्त हो जाता है। फिर तो जैसे यह भी एक खेल की तरह चलने लगता है। इस खेल में मनुष्य कभी प्रकृति में बदल जाता है तो कभी प्रकृति मनुष्य में बदल जाती है। देखें - मैं एक समुद्र हूं/तुम मेरा चंद्रमा//तुम्हारा मिलना/पूर्णिमा की उत्तेजना भरी रात्रि//मेरा दिल इतना बड़ा हो गया है/कि पूरे शरीर में फैल गया है/नाखूनों तक से 'धड़-धड़ की आवाजें आती हैं//कभी यह अनुभव नहीं था/कि मन में भी रक्त/आंधियों की तरह बहता होगा//कानों का लाल होना/समुद्र की सबसे ऊंची लहर है//मैं एक समुद्र हूं/तुम मेरा चंद्रमा।' (ज्वार)। इस तरह की अन्य कविताओं में 'रात के तट पर', 'पानी आजीवन यात्री है' जैसी कविताएं हैं तो दूसरी तरफ ऐसी कविताएं भी कम नहीं हैं जहां प्रकृति मनुष्यों में बदल गई है। मसलन 'छायाएं' कविता में सूर्य एक चरवाहे में बदल गया है जो शाम होते ही अपनी भेड़ों को लेकर घर लौट जाता है। इस तरह की ढेरों कविताएं हैं जो प्रकृति का मानवीकरण करती हैं और उनमें साधारण मनुष्यों के सुख-दुख और क्रिया-कलाप भर देती हैं और यह इतना स्वाभाविक लगता है कि पढ़ते हुए जरा भी अचरज नहीं होता। देखें - दिन भर/लेटी रहीं/वे छायाएं/अब उठ खड़ी हुई हैं// और पेड़ सोने चले गए।' (रात पाली)। इसी तरह 'मर्तबान का दर्शन' में कवि लिखता है कि - 'जब किसी मर्तबान को देखता हूं/और सोचता हूं उसके बारे में/तो मुझे पृथ्वी एक मर्तबान लगती है/घड़ी और आदमी भी एक मर्तबान लगता है/यहां तक कि मौसम भी//मन से विराट कोई मर्तबान नहीं हो सकता।' यह हेमंत का ही कवि है जो लिख सकता है कि - 'रेलवे स्टेशन की तरह / होती हैं आंखें//सारी यात्राएं/वहीं से/होती हैं/शुरू।' (आंखें)

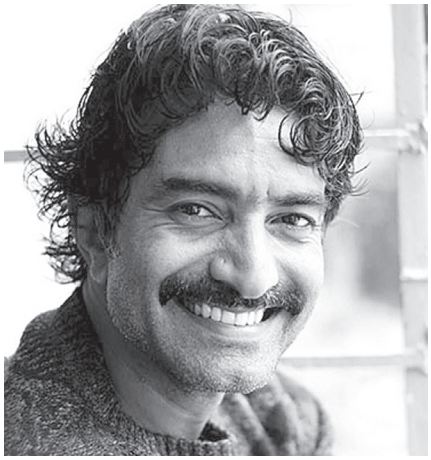

हेमंत देवलेकर के इस संग्रह में कई कविताएं ऐसी हैं जिन्हें बच्चों की कविताएं कहा जा सकता है। इसलिए नहीं कि वे बच्चों के बारे में हैं बल्कि इसलिए कि वे बच्चों के सामने भी सहजता से अपने को खोल देने की सामर्थ्य रखती हैं।

संग्रह में कई कविताएं ऐसी हैं जिन्हें बच्चों की कविताएं कहा जा सकता है। इसलिए नहीं कि वे बच्चों के बारे में हैं बल्कि इसलिए कि वे बच्चों के सामने भी सहजता से अपने को खोल देने की सामर्थ्य रखती हैं। 'समय और बचपन', 'बाल जिज्ञासा', 'हड्डी वार्ड में बच्चा', 'किताब', 'निवेदन', 'गिनती मुझको आई', 'मेले से लौटते बच्चों का गीत', 'तेरी गेंद' और 'बिल्ली की मां' सहित और भी कई कविताएं जितना बड़ों के लिए हैं उतना ही बच्चों के भी काम की हैं। वयस्क लोगों की दुनिया जिस हिसाब किताब के चक्कर में फंसती और उसी अनुपात में नष्ट होती चली जाती है यह कविताएं उसका विलोम रचती हैं। यह कविताएं पढ़ते हुए अपनी ही उन भोली भाली आंखों में झांकने की तमीज फिर से हासिल होती है जिन्हें हम न जाने कहां गुम कर आए हैं।

इसी तरह जब 'दस्ताने' का वाचक स्त्री के लिए दस्ताने खरीदते हुए रुक जाता है कि आखिर वह पहनेगी कब - 'मैं गरम कपड़ों के बाजार में था//मन हुआ/कि स्त्री के लिए/हाथ के ऊनी दस्ताने ले लूं//पर ध्यान आया/कि दस्ताने पहनने की फुर्सत/उसे है कहां//गृहस्थी के अथाह जल में/डूबे उसके हाथ/हर वक्त गीले रहते हैं/तो क्या गरम दस्ताने/स्त्री के हाथों के लिए बने ही नहीं...?// ये सवाल हमसे क्यों पूछते हो.../तमाम गर्म कपड़े/ये कहते, मुझ पर ही गर्म हो रहे थे'। ये सवाल समूची सभ्यता से पूछा जाने वाला सवाल है और खुद के भीतर झांकने का भी। इसी तरह जब वे संगीत को लेकर कविताएं रचते हैं तो जैसे एक अलग लय में पगी कविताएं सामने होती हैं। 'डल झील में एक शिकारा है संतूर', 'संगतकार को इशारा', 'तबलेवाला', 'हारमोनियम' और 'तानपूरे पर संगत करती स्त्री' जैसी कविताएं संगीत के जिस सुर को दृश्यमान करती हैं वह अनोखा है। मुख्य कलाकार का अपने संगतकार को यह इशारा देखें - 'सुनो/भाई तुम मेरी गाड़ी के ड्राइवर थोड़े ही हो/तुम्हारी भी अपनी गाड़ी है//तुमने अच्छी संगत दी/कब तक तुमको बांध कर रखूं/जाओ थोड़ा घूम-फिर कर आओ/इसी 'ताल' के घने जंगल में/पहाड़, घाटी, झील, झरने/नदी, पशु-पक्षी कितना कुछ है/देखने-घूमने को/मौसम भी सुहाना है/याद रखना शाम को/मतलब 'सम' पर हम फिर मिलेंगे/मैं तब तक इसी लय पर/इंतजार करूंगा तुम्हारा'। पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे वे जीवन में खुलेपन और लोकतंत्र की बात कर रहे हों। जैसे संगीत के स्वर देर तक हमारे कानों में घुलते रहते हैं वैसे ही यह कविता देर तक अपना अर्थ खोलती रहती है।

हेमंत का कवि कविता के बारे में, घर के बारे में या कि अपने समय की निष्क्रिय आलोचना के बारे में भी उसी लोकतांत्रिक अंदाज में कविताएं रचता है। इसीलिए वह लिख पाते हैं कि - 'मैं जब आरोप लगाता हूं/यह समय भयानक है/तो भूल जाता हूं/कि उसी समय में धड़कता/एक क्षण मैं भी हूं/इस तरह सारे आरोप/शुरू मुझसे होते हैं//...मैं बाजार को कोसते हुए/जब लिखता हूं कविताओं में आक्रोश/तो यह भूल जाता हूं/इतनी कुव्वत नहीं/कि नकार सकूं चमकीले प्रलोभन/इस तरह सारे झूठ/ शुरू मुझसे होते हैं'। (पहल)। इसी तरह वे कवि और कविताओं के द्वंद्व पर कई कविताएं लिखते हैं पर जब वह कलम पर लिखते हैं तो यह द्वंद्व पीछे छूट जाता है और वह भरोसा सामने आता है जो सब कुछ के बाद लिखने के लिए बार बार अपने आप को भी दांव पर लगा देता है।

तभी वह लिखते हैं कि - 'बर्फ के नीचे/दबे हैं/शब्द//कलम से/हटाई जा रही/बर्फ'। (कागज)। यह इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि - 'हाथ की छठी उंगली है कलम/जैसे संवेदना की छठी इंद्रिय// ...शब्द अगर छाया है कलम की/तो प्रकाश का वह स्रोत कहां है?' (कलम के बिंब)। हेमंत की यह कविताएं प्रकाश के जिस स्रोत से अपने लिए रोशनी लेती हैं वह इन्हें विरल काव्य-अनुभूति में रच देता है। वे यह रोशनी उस विशाल प्रकृति से लेते हैं जिसका एक अहम हिस्सा मनुष्य और उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियां भी हैं। उनकी कविताओं का मनुष्य उसी संगतकार की तरह है जिसे घूमने टहलने और रचने की पूरी आजादी है पर वह 'सम' पर प्रकृति से जुड़ा हुआ है। हेमंत की कविताएं पढ़ते हुए हम बार-बार जानते हैं कि यह जुड़ाव हमारा सौभाग्य है।

नैतिक और मानवीय मूल्यों की गिरती साख

संतोष कुमार बघेल

समीक्षक

संपर्क :
डी- 4, गणेश इन्क्लेव
कोनी,
बिलासपुर-496009,
(छत्तीसगढ़)
मो. 9479273785

पुस्तक : नैतिक और मानवीय मूल्य
लेखक : अजित नारायण त्रिपाठी
प्रकाशक : प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ: 246
मूल्य: ₹ 630

अजित नारायण त्रिपाठी की पुस्तक 'नैतिक और मानवीय मूल्य' भारतीय समाज के विघटन के विभिन्न कारणों को आईने की तरह प्रदर्शित करती है। इस आईने में सभ्य नागरिक बनने और बिगड़ने के तमाम पक्षों पर विस्तार से वर्णन किया गया है। नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए इस पुस्तक को छह अध्यायों और उपअध्यायों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैः जीवन मूल्य एवं जीवनदृष्टि, व्यक्तित्व का सर्वांगीण, मानवीय क्षमताएं एवं उनका विकास, नैतिकता एवं नैतिक मूल्य, मानवीय मूल्य, हम और हमारा समाज। लेखक ने स्पष्ट किया है कि संकुचित मानसिकता वाले आर्थिक- राजनैतिक विचार-धाराओं वाले व्यवस्थाओं से मानव कल्याण की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती है। अहंवादी, व्यक्तिवादी, अर्थप्रधान, उपभोक्तावादी संस्कृति के भाव से ओतप्रोत व्यक्ति भी मानववादी मूल्यों का ह्रास ही करेगा न कि नैतिक और मानवीय मूल्यों का संरक्षण करेगा। वर्तमान समय में जिस तेज गति के साथ भारतीय समाज के अंदर की भावना (सोच) में निरंतर गिरावट आ रही है, इससे भविष्य में अपराध में निरंतर वृद्धि ही होगी।

भारतीय समाज की कल्पना मनुष्य के चेतनाशील होने के साथ ही एक बृहद समाज का आकार और स्वरूप लेने लगा। समय के साथ भारतीय सभ्य समाज की आधारभूत संरचना तैयार होने लगी। इस संरचना में प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से क्रिया-विनिमय करना पड़ता था। क्रिया-विनिमय के फलस्वरूप एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति के मूल्यों को समझने लगा। इस तरह आदान-प्रदान की प्रक्रिया ने भारतीय समाज की अवधारणा को फलीभूत किया, जिससे समाज का नवीन ढांचा तैयार हो गया और लोगों ने इस ढांचे के अनुरूप अपनी जीवन शैली में भी व्यापक परिवर्तन किया। जैसे-जैसे मनुष्य और अधिक चेतनाशील होने लगा, वहां लाभ और हानि का बोध होने लगा। लाभ और हानि के साथ ही भारतीय समाज की संरचना में विघटन का सिलसिला प्रारंभ हो गया, जिसके कारण वर्चस्वशीलता, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, अहम, लाग-लपेट, निजी स्वार्थ, लालच, मोह-माया आदि विकृतियां व्यक्ति के अंदर समाहित होने लगा और इसी विकृति के अनुसार सामाजिक संरचना का स्वरूप भी प्रतीत होने लगा। तब से लेकर अब तक हमें विघटित समाज का उदाहरण देर सवेर देखने को मिल ही जाता है। दूर कहीं जाने की जरूरत नहीं है, किसी अखबार को उठाकर ही देख लीजिए, विघटित समाज के तमाम उदाहरण आपको मिल जाएंगे। जैसे- पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, पड़ोसी आदि के बीच आपसी अथवा वैचारिक मतभेद के कारण समाजिक विघटन न सिर्फ दिखाई देता है बल्कि तेजी से बढ़ रहा है। विघटित समाज के कारण मानवीयता, नैतिकता, सौहार्द, प्रेम, भाईचारा, संवेदना आदि में व्यापक गिरावट आई है।

अजित नारायण त्रिपाठी की पुस्तक 'नैतिक और मानवीय मूल्य' भारतीय समाज के विघटन के विभिन्न कारणों को आईने की तरह प्रदर्शित करती है। इस आईने में सभ्य नागरिक बनने और बिगड़ने के तमाम पक्षों पर विस्तार से वर्णन किया गया है। नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए इस पुस्तक को छह अध्यायों और उपअध्यायों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैः जीवन मूल्य एवं जीवनदृष्टि, व्यक्तित्व का सर्वांगीण, मानवीय क्षमताएं एवं उनका विकास, नैतिकता एवं नैतिक मूल्य, मानवीय मूल्य, हम और हमारा समाज।

समाज में लोग अच्छे मूल्यों को छोड़कर अधिकांशतः स्वहित के मूल्यों को अपना रहे हैं। स्व के आगे वह नैतिक और मानवीय मूल्यों का बलिदान चढ़ा देते हैं। स्वकेंद्रित, व्यक्तिवादी और उपभोक्तावादी जीवन की सोच वर्तमान समाज में हावी हो गई है जिसके आगे मूल्यपरक जीवनदृष्टि को कोई अपनाना नहीं चाहता है। वर्तमान परिदृश्य में

जिस संस्कार और परंपरा से हमारी नई पीढ़ी निकल रही है उनकी सोच उपभोक्तावादी या बाजारवाद तक सिमट कर रह सी गई है, जिसके आगे देशहित, समाजहित नगण्य है। इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनजर लेखक आगाह करते हैं कि- ''ऐसी जीवनदृष्टि विकसित करने के लिए हमें पूरी ईमानदारी से विचार करना होगा कि हम जीवन में क्या पाना चाहते हैं? कैसा व्यक्ति बनना चाहते हैं? कैसा जीवन जीना चाहते हैं? ऐसे प्रश्नों पर हम प्रायः सचेत होकर विचार नहीं करते। पर जब ऐसा करते हैं तो प्रायः सभी लोग अपनी जीवनाकांक्षाओं में और सुख की प्राप्ति को सर्वोच्च स्थान देते हैं। सफलता से तात्पर्य है भौतिक सफलता अर्थात आर्थिक व समाजिक सफलता। दूसरे शब्दों में पैसा, पद और प्रतिष्ठा की प्राप्ति।'' (पृ. 05)

वर्तमान परिदृश्य पर हम यदि नजर दौड़ाएं तो हम पाते हैं कि नई पीढ़ी में नैतिकता, मानवीयता और प्रेम जैसे शब्दों के मूल्य में गिरावट आ रही है, क्योंकि नई पीढ़ी के अधिकांश लोगों की सोच और समझ सिमट सी गई है। ये लोग आधुनिक युग के नए भावबोध से परिलिप्त हैं जिसमें अच्छी नौकरी, पैसा, गाड़ी, बंगला अर्थात् भौतिक सुख-सुविधा के पीछे ये लोग पागल हो चुके हैं। इसके आगे इन्होंने कुछ दिखाई नहीं देता है और इन्हीं चीजों के चाहत में निम्न वर्ग, मध्य वर्ग, उच्च वर्ग आदि लोग अपना सारा जीवन खर्च कर देते हैं। इसका कारण बाजारवाद, आधुनिक विज्ञापन, सेलिब्रेटी बनने की चाहत, शक्ति प्राप्त करने की चाहत इत्यादि हैं। यही वो कारण हैं जो नई पीढ़ी के अधिकांश नवयुवकों की सोच को पंगु बना रहा है। ये लोग अपनी मेहनत, लगन और ईमानदारी से इन चीजों को प्राप्त कर लें तो कोई बात नहीं। इससे कोई समस्या भी नहीं होगी। परंतु भौतिक सुख-सुविधा के अंधेपन में नई पीढ़ी गलत रास्तों का चयन करते जा रहे हैं, जिसकी वजह से ये लोग न सिर्फ मानवीयता, नैतिकता का पतन करते हैं बल्कि अपराध जैसे कार्यों को करने से भी नहीं कतराते हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज में नैतिकता और प्रेम कैसे लोगों के जहन में आएगा? यह एक बड़ी चुनौती वर्तमान समाज में उभर कर सामने आई है।

भारतीय समाज की संरचना के मूल में नैतिकता मानवीयता, करुणा, दया आदि भाव होना चाहिए, परंतु समाज की सामाजिक संरचना ऐसा बनता जा रहा है कि इन शब्दों का मूल्य ही समाप्त होता प्रतीत हो रहा है। समाज में रहने वाले लोगों का पूरा ध्यान वर्तमान बाजार के चकाचौंध की दुनिया ने अपने घेरे में ले लिया है। इसलिए आज व्यक्ति सामाजिक न होकर एकल की भावना से ओतप्रोत है। वह सिर्फ अपना और अपने परिवार या परिचय वाले तक ही सिमट सा गया है। व्यक्तिगत स्वार्थों की वजह से नैतिक मूल्यों का ह्रास करने से नहीं कतरा रहे हैं। परिणामस्वरूप आम जनता माया और मोह में फंस कर एकांगी दृष्टि का निर्माण करते हैं। इस एकांकी दृष्टि ने सामाजिक मूल्यों की जड़ों को हिलाकर रख दिया है, जिसका शिकार वर्तमान तथा भावी पीढ़ी हो रही है। इस जकड़न के बाहर नई पीढ़ी के लोग नहीं निकलना चाहते हैं क्योंकि ये लोग परिवार, घर, गाड़ी, बंगला की चाहत में कुंठित मानसिकता के शिकार हो गए हैं। इस वजह से लोग अपने नैतिक कर्तव्य को छोड़कर लूट, भ्रष्टाचार, अत्याचार आदि शब्दों को चरितार्थ करने में कोई कमी नहीं करते हैं।

समाज में लोग अच्छे मूल्यों को छोड़कर अधिकांशतः स्वहित के मूल्यों को अपना रहे हैं। स्व के आगे वह नैतिक और मानवीय मूल्यों का बलिदान चढ़ा देते हैं। स्वकेंद्रित, व्यक्तिवादी और उपभोक्तावादी जीवन की सोच वर्तमान समाज में हावी हो गई है जिसके आगे मूल्यपरक जीवनदृष्टि को कोई अपनाना नहीं चाहता है। वर्तमान परिदृश्य में जिस संस्कार और परंपरा से हमारी नई पीढ़ी निकल रही है उनकी सोच उपभोक्तावादी या बाजारवाद तक सिमट कर रह सी गई है, जिसके आगे देशहित, समाजहित नगण्य है।

वर्तमान समय पर नजर दौड़ाएं तो हम पाते हैं कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मुसीबत को दरकिनार कर देता है। नजरों के सामने ऐसी कई घटनाएं जैसे- एक्सीडेंट, मारपीट, गाली-ग्लौज, छेड़छाड़ आदि घटनाओं को लोग देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। ऐसी स्थिति का निर्माण क्यों और कैसे हो रहा है? यह विचारणीय और गंभीर विषय है। अजित नारायण त्रिपाठी ने इस पुस्तक के माध्यम से स्वहित के विचार से ऊपर उठकर परहित के भाव का जागृत होना आवश्यक बताया है। यह भाव व्यक्ति और समाज के अंदर जबतक नहीं आएगा तब तक व्यक्ति और समाज के अंदर नैतिक मूल्यों का विकास नहीं होगा, जिसके प्रमुख कारणों पर लेखक ने विस्तार से प्रकाश डाला है।

यहां लेखक ने पुरानी परंपरा और नई परंपरा के बीच के टकराहट को एक प्रमुख कारण बताते हुए कहा है कि पारपंरिक लोग अपनी जीवनदृष्टि और जीवनचर्या को बदलना नहीं चाहते हैं और नई पीढ़ी के लोग पारपंरिक जीवनदृष्टि और जीवनचर्या को अपना नहीं पाते हैं। परिणामतः इनके अंदर विरोध का स्वर फूट पड़ता है इसके बावजूद मूल्यपरक शिक्षा की जगह भौतिकवादी जीवन की लालसा का भाव ही दिखाई पड़ता है।

भौतिकवादी जीवनदृष्टि का प्रभाव कैसे परिवार और समाज पर पड़ता है, इसके दुष्परिणाम की ओर लेखक आगाह करते हैं कि- 'हमारे पारिवारिक संबंध प्रायः कुछ रूढ़िवादी मान्यताओं से संचालित होते हैं। परिवार के सभी निर्णय बड़े-बुजुर्ग ही लेते हैं। युवा वर्ग विशेषतः लड़कियां अपने जीवन के छोटे-बड़े निर्णय स्वयं लेने में सक्षम नहीं मानी जातीं। उन्हें बड़ों की इच्छाओं के अनुरूप चलना है। पर आज की युवा पीढ़ी अपने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का सम्मान चाहती है। उसे पारिवारिक अधिनायकवाद स्वीकार नहीं है। और नई पीढ़ी अब इसके खिलाफ विद्रोह करने से भी नहीं डरती। ऐसे माहौल में पारिवारिक रिश्ते तनावपूर्ण हो जाते हैं।' (पृ. 67)

अच्छे संस्कार हमेशा से ही परिवार और समाज के लिए लाभकारी होता है जहां अच्छे संस्कार के नाम पर परिवार और समाज पर कुरीतियों को थोपा जाना कहां तक तर्कसंगत है? व्यक्ति के व्यक्तित्व की आंतरिक और बाह्य सोच के साथ नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है इस ओर लेखक ने दूसरे अध्याय में विस्तार से प्रकाश डाला है। लेखक यह मानते हैं कि- ''ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता, न्यायप्रियता, दायित्वभाव, कर्तव्यपरायणता आदि चारित्रिक सद्गुण हमारे व्यक्तित्व को नैतिक दृष्टि से परिमार्जित करते हैं। नैतिकता के साथ सही-गलत, उचित-अनुचित, अच्छा-बुरा का भाव जुड़ा होता है। नैतिक-अनैतिक का विचार मुख्यतः एक बौद्धिक अवधारणा है। पर इन नैतिक सद्गुणों के अतिरिक्त कुछ अन्य मानवीय सद्गुण (संवेदनशीलता, निरंकारिता, आत्मसंयम) हैं जो हमारी मानवीयता को विभूषित करते हैं। (पृ.91)

सकारात्मक सोच और नई परिवर्तन की

मनोवृत्ति यदि लोगों के जीवनचर्या में शामिल कर लिया जाए तो निश्चित ही मानवीय मूल्यों की अवधारणा को स्थापित किया जा सकता है। सकारात्मक सोच के साथ कैसे मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जाए, इस पर विस्तार से लेखक ने तृतीय अध्याय में चर्चा करते हुए लिखते हैं कि- 'ऐसी तीन विशिष्ट मानवीय क्षमताएं, बौद्धिक क्षमता, भावनात्मक क्षमता एवं सृजानात्मक क्षमता। ये क्षमताएं हमें मानवेतर प्रजातियों से अलग करती हैं।' (पृ. 116)

विकासवादी सोच में जब तक मानवीयता का बोध नहीं होगा तब तक मानवीय मूल्यों की स्थापना की कल्पना बेईमानी होगी। ऐसी परिस्थिति में लेखक जिस नैतिकता और नैतिक मूल्यों की बात करते हैं वह भारतीय समाज के जीवन व्यवहार में आएगा यह कह पाना कठिन है।

अजित नारायण त्रिपाठी नैतिक मूल्यों के उन सारे बिंदुओं का उल्लेख करते हैं जिनकी कल्पना विशेष दृष्टि रखने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। नैतिकता और नैतिक मूल्य को व्यक्ति और समाज में किस प्रकार समाहित किया जाए, उसका सुंदर वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया है। वे घोषित करते हैं कि-'सभी नैतिक और मानवीय मूल्यों का उद्भव- बिंदू एक ही है। वह है हमारी सहज स्वभावगत मानवीय संवेदनशीलता अर्थात् दूसरों की वेदना को स्वयं अपने में अनुभव कर पाने की क्षमता।' (पृ. 157)

जब मानव को प्रत्येक मानव के प्रति अपनत्व का भाव जागृत हो जाएगा, उस समय स्वहित का बलिदान तय है और परहित के भाव से ओतप्रोत एक नए समाज का निर्माण होगा, जो मानवीय मूल्यों की अवधारणा की संकल्पना साकार कर सकती है। नैतिक और मानवीय मूल्य एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों के समावेश से ही नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सकता है। संकुचित जीवनदृष्टि और विश्वदृष्टि से ऊपर उठकर

अजित नारायण त्रिपाठी ने पुरानी परंपरा और नई परंपरा के बीच के टकराहट को एक प्रमुख कारण बताते हुए कहा है कि पारपंरिक लोग अपनी जीवनदृष्टि और जीवनचर्या को बदलना नहीं चाहते हैं और नई पीढ़ी के लोग पारपंरिक जीवनदृष्टि और जीवनचर्या को अपना नहीं पाते हैं। परिणामतः इनके अंदर विरोध का स्वर फूट पड़ता है इसके बावजूद मूल्यपरक शिक्षा की जगह भौतिकवादी जीवन की लालसा का भाव ही दिखाई पड़ता है।

करुणा, प्रेम, त्याग, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना, मूल्य विमर्श आदि के द्वारा नैतिक और मानवीय मूल्यों के द्वार तक पहुंचा जा सकता है। पंचम अध्याय में लेखक ने राष्ट्रीय स्तर और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कैसे मानवीय मूल्य को साकार किया जाए, इस पर विस्तार से चर्चा करते हैं। नैतिकता और मानवीय मूल्यों तक पहुंचने के मार्ग के बारे में लेखक लिखते हैं कि-'अतः नैतिक और मानवीय मूल्यों को व्यक्ति के व्यक्तित्व में तथा लोक मानस में सम्यक रूप से प्रतिष्ठित करने के लिए व्यक्ति परिवर्तन तथा व्यवस्था परिवर्तन, दोनों ही स्तरों पर प्रयास करने की आवश्यकता है।' (पृ. 196)

मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में एक व्यक्ति के साथ समाज का भी अहम योगदान होता है। सभ्य लोगों को अकसर यह डर रहता है कि समाज क्या कहेगा? इस डर के कारण सही और गलत निर्णय लेने में ज्यादातर लोग असमर्थ रहते हैं। लेखक ने षष्ठम अध्याय में 'हम और हमारा समाज' शीर्षक से उन तमाम विषय-वस्तुओं पर प्रकाश डाला है, जिससे सभ्य और असभ्य समाज के निर्माण के कारण और परिस्थिति की पड़ताल की जा सके।

पारंपरिक भारतीय समाज की सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष के कारण आधुनिक समाज दर्शनों में, अच्छे समाज की अवधारणा सभ्य और मानवोचित समाज की परिकल्पना- शीर्षकों के माध्यम से सभ्य समाज की कल्पना करते हैं, परंतु यह कल्पना, कल्पना ही बन कर रह गई है। लेखक इस ओर यह चिंता व्यक्त करते हैं कि- 'स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग सात दशकों बाद भी एक अच्छे समाज के हमारे ये सपने आधे-अधूरे ही रह गए हैं। ऐसा नहीं लगता कि हम भय-शोषण-मुक्त समृद्ध, विकसित सभ्य और मानवोचित समाज के आदर्शों की ओर बढ़ रहे हैं।' (पृ. 242)

लेखक ने स्पष्ट किया है कि संकुचित मानसिकता वाले आर्थिक- राजनैतिक विचार-धाराओं वाले व्यवस्थाओं से मानव कल्याण की कोई उन्मीद नहीं की जा सकती है। अहंवादी, व्यक्तिवादी, अर्थप्रधान, उपभोक्तावादी संस्कृति के भाव से ओतप्रोत व्यक्ति भी मानववादी मूल्यों का ह्रास ही करेगा न कि नैतिक और मानवीय मूल्यों का संरक्षण करेगा। वर्तमान समय में जिस तेज गति के साथ भारतीय समाज के अंदर की भावना (सोच) में निरंतर गिरावट आ रही है, इससे भविष्य में अपराध में निरंतर वृद्धि ही होगी।

त्रिपाठी जी के अथक प्रयास से बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 'मानवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र' की स्थापना की गई। ऐसे केंद्रों की स्थापना सभी शैक्षणिक और अशैक्षणिक संस्थाओं में होना चाहिए, जिसमें पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में नैतिक और मानवीय मूल्यों की सार्थक अवधारणा का परिपालन ऐसे संस्थानों में किया जाए, जिससे सभ्य नागरिक तथा संवेदनशील व्यक्ति का निर्माण हो। जहां सभ्य समाज की परिकल्पना के साथ नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सके। इन मूल्यों को समाज में कैसे स्थापित किया जाए, उन तमाम बिंदुओं पर विस्तार से वर्णन किया है।

इस किताब को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कलयुग के बजाय सतयुग में पहुंच गया हूं, जिसे स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने पर एक बेहतर समाज की संकल्पना साकार करने में सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में 'मानवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र' की स्थापना की गई। ऐसे केंद्रों की स्थापना सभी शैक्षणिक और अशैक्षणिक संस्थाओं में होना चाहिए, जिसमें पारंपरिक और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में नैतिक और मानवीय मूल्यों की सार्थक अवधारणा का परिपालन ऐसे संस्थानों में किया जाए, जिससे सभ्य नागरिक तथा संवेदनशील व्यक्ति का निर्माण हो। जहां सभ्य समाज की परिकल्पना के साथ नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सके। इन मूल्यों को समाज में कैसे स्थापित किया जाए, उन तमाम बिंदुओं पर विस्तार से वर्णन किया है।

कविता

चिर-परिचित अनुभवों को बांचती कविताएं

अर्पण कुमार

कवि-कथाकार

संपर्क :
फ्लैट संख्या 102, गणेश हेरिटेज, स्वर्ण जयंती नगर, आर.बी. हॉस्पीटल के समीप (पत्रकार कॉलोनी), गौरव पथ, बिलासपुर-495001 (छत्तीसगढ़)
मो. 9413396755

पुस्तक : बिना मुंडेर की छत
लेखक : प्रेम रंजन अनिमेष
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 160
मूल्य : ₹ 350

'बिना मुंडेर की छत' प्रेम रंजन अनिमेष का नवीनतम काव्य-संग्रह है। कुल 80 कविताओं के इस संकलन में हमें हर मूड्स की कविताएं पढ़ने को मिलती हैं। यहां प्रेम रंजन रचित काव्य-परिदृश्य अपनी पूरी विविधता और ठसक के साथ फैला हुआ है। कविताएं हमसे सहज ही अपना एक नाता जोड़ लेती हैं।

'बिना मुंडेर की छत' प्रेम रंजन अनिमेष का नवीनतम काव्य-संग्रह है। कुल 80 कविताओं के इस संकलन में हमें हर मूड्स की कविताएं पढ़ने को मिलती हैं। यहां प्रेम रंजन रचित काव्य-परिदृश्य अपनी पूरी विविधता और ठसक के साथ फैला हुआ है। संग्रह की पहली ही कविता 'नवान्न' हमसे सहज ही अपना एक नाता जोड़ लेती है। कवि अपने सर्जक के नएपन को लेकर सोचता है और इस सोचने में सर्जक के समक्ष आनेवाली चुनौतियों का जिक्र है। कवि उन चुनौतियों के साथ अपने भीतर की अनुभूतियों को शब्द देता चलता है। कड़ी दर कड़ी उसे प्रस्तुत करते हुए, किसी अभिमान से मुक्त वह दोनों तरह की बातें करता है। एक तरफ वह लिखता है-

'नया है नई आंखों के नए पानी में तिरता सपना'
नए पंखों में भरी नई हवा
नए तिनके सजावट इनकी नई' (पृ. 9)

तो दूसरी तरफ कवि को इसका भी अहसास है-

'दुख तो वही बरसों बरस पुराना हजार बाहों वाला
पर अभी अभी जन्मा है मेरे यहां
उसकी धमक नई है
उसकी किलक नई...' (पृ. 9)

निश्चय ही यह छोटी कविता जिंदगी के हर रंग को उकेरती हुई अपने कहे में काफी बड़ी हो जाती है। नए अन्न की खुशबू और खुशी की वही भावना नई कविता सिरजते हुए भी महसूस की जा सकती है, कवि इसे अपनी कविता में महसूसता और साधता चलता है। कवि ने चराचर जीवन के कई चित्रों को सघन आत्मानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेम रंजन की यह सरलता और आत्मिकता ही उनके कवि का हासिल है। वह अपने हिसाब से दुनिया को देखता है और उसे कविता में शब्दाकार दे वापस उसे दुनिया के समक्ष रखता है। इस भाषिक प्रस्तुति में तमाम संघर्षों, विरोधाभासों और प्रतिकूलताओं के बीच भी कवि उम्मीद का रास्ता नहीं छोड़ता है। आशा से भरी ऐसी कई कविताएं इस संग्रह में पढ़ी जा सकती हैं। कहना गलत न होगा कि अदम्य आशावाद से भरा प्रेम रंजन का कवि कभी हार नहीं मानता है और इसके लिए समुचित ऊर्जा अक्सरहां वह इसी जीवन की निराशाजन्य परिस्थितियों के भीतर से प्राप्त करता है। 'निब', 'सुबह होने को है', 'जुगलबंदी', 'अंधेरे में माचिस की तलाश में एक कविता', 'कृतज्ञता', 'भरोसा', 'उम्मीद की एक कविता', 'युक्ति' जैसी कविताएं उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं। मगर उसका आशावाद कहीं से इकहरा नहीं है। वह जीवन की संपूर्णता के एक घटक के रूप में ही आता है। वह यथार्थ से विलग नहीं है, बल्कि उसके कसैलेपन के बीच एक मिठास के रूप में आता है। कवि को अपने आसपास से कई मूल्यवान/पारंपरिक चीजों के सरकने का दुख है और उसे ऐसी निर्मम स्थितियों पर आक्रोश आता है। वह इन सबका चित्रण भी करता है। मसलन, 'मिट्टी' कविता में मिट्टी से बने विभिन्न सामानों के एक-एक कर छूटते चले जाने की बात करते हुए वह कहता है -

'वह नहीं किसी की गांठ में
और जड़ों में बहुत कम
मिट्टी नहीं मांजती हमें अब
और हम नहीं गढ़ते उसे' (पृ. 20)

प्रेम रंजन के कवि के भीतर इसे लेकर आक्रोश भी है। वह प्रकृति से दूर भागती मानव जिंदगी को लेकर अपना क्षोभ व्यक्त करता है और कहता है -

'पहली बूंदों के पड़ते
घर से उठती नहीं वह सोंधी गंध
और कांच के ये बच्चे
नहीं जानते उसका स्वाद' (पृ. 20)

बच्चों को 'कांच' कह कर कवि बच्चों के व्यक्तित्व से अधिक हमारे वर्तमान शहरी लालन-पालन पर सवाल खड़े करता है, जहां हम अभिभावक उन्हें जीवन की सहजता से कोसों दूर करते चले जा रहे हैं और अतिशय सुरक्षा और अतिरिक्त चिंता के घेरे में हमने उन्हें प्रकृति से लगभग बेमना सा और निरपेक्ष बना दिया है। मगर इन सबके बावजूद कवि का एक और मन है, जो थक कर फिर खड़ा हो उठता है और जो निराशा के खा थपेड़े बार-बार आशा की उजास फैलाता है। 'कुत्ते की नींद' कविता में कवि, एक कुत्ते की निश्चिंतता को मनुष्य के लिए ईर्ष्या का वायस मानता है। व्यस्त सड़क पर एक किनारे छांह में निश्चिंत सोते इस चिर-परिचित दृश्य को रखकर कवि अपनी इस कविता में सवाल

उठाता है,

'क्या आदमी के पास इस कुत्ते का
इत्मीनान है कुत्ते जैसा भरोसा दुनिया पर
कुत्ते जितनी नींद... ?' (पृ. 116)

स्पष्टतः जीवन, अपनी पूरी रागात्मकता और हुमक के साथ प्रेमरंजन की कविताओं में उपलब्ध है। जीवन से उनकी कविताओं का संबंध नाभि-नाल का सा है। 'सिरजनहार' कविता संग्रह की कुछ महत्वपूर्ण कविताओं में एक है, जहां सर्जक अपनी सर्जन-क्षमता के बावजूद कई बार स्वयं अनर्जक या सर्जन के सुख से वंचित रह जाता है। सैलून वाले के यहां जब कोई ग्राहक नहीं आता है, तब वह स्वयं को ही 'अनदिन के आईने में' निहारता रहता है। किसी निराश या अनुर्वर दृश्य को कविता में यूं प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है। प्रेमरंजन की कई कविताओं में हमें गेयता भी देखने को मिलती है, जो अक्सरहां लोक-गीतों की मिठास लिए होती हैं। इन कविताओं में भी वे बड़े सधे ढंग से अपनी बात रखते हैं। दुनिया का भरपूर अवलोकन और उनका सहज और डूबा हुआ चित्रण हमें प्रभावित किए बगैर नहीं रहता। उनकी ओर कवि सहज आकर्षित होता है और उसका यह भाव, हमें उसकी कविताओं में भी देखने को मिलता है। 'दिनचर्या के आगे भीगी बिल्ली' बना कवि 'दिनचर्या की खिल्ली' कैसे उड़ाता है, छुट्टी को लेकर दिनभर का उसका अपना मनचाहा उपक्रम, इस कविता को सच्चा और जीवंत बना देता है। कहने की जरूरत नहीं कि सरल कविता लिखना उसी तरह आसान नहीं है, जिस तरह सरल जीवन जीना। उदाहरण के लिए ये दो पंक्तियां रखी जा सकती हैं -

'इत उत उड़ते फिरते रहना जैसे नई तितल्ली'

'इलायची' जैसी कविताएं, कवि के भीतर की सादगी को अभिव्यक्त करती हैं। जीवन की छोटी-छोटी चीजों से यूं प्रस्थान बिंदु प्राप्त करना, जीवन की सहजता और मिट्टी की सहधर्मिता से जुड़े कवि के लिए आवश्यक है। प्रेमरंजन की कविताएं, हमारे परिवेश से जुड़ी कविताएं हैं। प्रेम रंजन को प्रकृति और प्रेम का कवि कहना गलत न होगा। 'झींसी', 'रात', 'सुबह होने को है', 'जीवन राग', 'कविता और शहतूत', 'चांद पर चना' आदि ऐसी ही कविताएं हैं। 'झुर्रियों में हंसी' शीर्षक कविता में कवि, वृद्धावस्था की गरिमा और विपुलता से पहले रोमांचित होता है और फिर अपने उस रोमांच को शब्दाकार देता है-

'सतत अनहद निनाद सी
झुर्रियों की झुरमुट में झिलमिलाती हंसी
यही तो जीवनदर्शन
एक जीवन में
कई जीवन, कई दर्शन' (पृ. 127)

हमारे लिए इससे बड़ी बात क्या होगी कि हमारा जीवन ही दर्शन हो जाए। हमारा जीआ हुआ शास्त्र -सम्मत हो जाए। 'चुंबक' शीर्षक कविता में व्यक्ति

एकाधिक विधाओं में सक्रिय प्रेम रंजन के इस संग्रह की कविताएं वर्तमान हिंदी कविता के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति से हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। सरल और बोलचाल की भाषा में लिखी ये कविताएं हमारे चिर-परिचित अनुभवों को ही एक विशिष्टता प्रदान करती हैं।

के भीतर की जिज्ञासा और उसके अनथक उत्साह को वाणी प्रदान किया गया है। इसमें लोक में अनुस्यूत बचपन की उत्सुकता को बड़े सहज भाव से प्रस्तुत किया गया है। एक बालक, चुंबक को लेकर शुरू से आकर्षित है और वह कई तरीके से चुंबक बनाता आया है और ये सारी चीजें उसकी स्मृति में कहीं गहरे पैठी हुई हैं। यह कविता बचपन की बात करती बचपन के पार चली जाती है। 'दृष्टि' जैसी कविताएं, राजनीतिक-सामाजिक विडंबनाओं को उठाती है। ऐसी कविताएं किसी भी संग्रह का हासिल होती हैं। कवि पूर्वाग्रह-मुक्त हो और स्वतंत्र रूप से अपने आसपास को देखता है और तहों में छुपे सच को कवि उजागर करता है-

'जो सिंहासन पर है
विदूषक मालूम होता
शासक की हत्या कर जो बैठ गया गद्दी पर' (पृ. 108)

और जब वर्तमान ऐसा हो तो भविष्य कैसा हो सकता है! कवि यह देख सिहरता है और डरता है। और फिर, वह डर इन शब्दों में निकलता है-

'आतिशबाजियों की कौंध में झिलमिलाता
बच्चों के कल का सन्नाटा' (पृ. 108)
और कविता का अंत भी कितना सच्चा है!
'चीजें नई रोशनी में खुल रहीं
या यह अंधेरा है गहराता
जिसमें देखने के लिए
छटपटा रहीं आंखें...' (पृ. 109)

कवि की 'दृष्टि' विरल हो न हो, उसके देखे की सघनता और उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति, बेशक विरल होती है। वह उन जगहों पर जाकर टिकता और उसे देखता है और जब वह उसे अभिव्यक्त करता है, तो हमें उस वर्ण्य में निहित व्यंजना, कहीं भीतर तक प्रभावित कर जाती है। 'युक्ति', 'झांइयां' जैसी कई कविताएं, व्यवस्था के भीतर की विद्रूपताओं को उठाती हुई एक हास्य पैदा करती हैं। कवि अपनी ओर से कोई टिप्पणी नहीं करता। इससे कविता का प्रभाव, द्विगुणित होकर आता है। 'सहयात्रा', 'पुरखे', 'मिट्टी' आदि ऐसी ही कविताएं हैं।

अपने समय के यथार्थ से टकराती कविताएं, अपनी युगीन वास्तविकताओं के छद्म रूपों को प्रकट करती हैं। यहां कविताएं अपने तरीके से सत्य का संधान करती हैं और हमारे समय के उन विरोधाभासों को उठाती हैं, जिसे लेकर जब-तब हमारी नागरिक चेतना भी कसमसाती रहती है। 'मान' जैसी कविताएं हमें हमारे भीतर पलते अनावश्यक अहं को आगे और पोषित करते चले जाने से रोकने का काम करती हैं। कवि हमारी और अपनी मनःस्थितियों को पढ़ता-देखता है और वहां विकसित होती ग्रंथियों को प्रस्तुत करता है। वैसे ही, जब वह अपने आसपास पर नजर दौड़ाता है, तो समाज में व्याप्त छोटी-मोटी बुराइयों पर भी उसका ध्यान जाता है और वह उन्हें अपने हिसाब से अपनी कविताओं में उठाता है। प्रेमरंजन ने अपनी कविताओं में ये दोनों उत्तरदायित्व पूरी ईमानदारी से उठाए हैं। मगर, कवि यहीं पर आकर रूकता नहीं है। वह नैराश्य के बादल को चीरता आगे बढ़ता है। वह विश्वास के बीज में नव-परिवर्तन के पौधे को अंकुरित होता देखना चाहता है। वह अपनी 'भरोसा' कविता में लिखता है...

'कुछ भरोसों की रेजगारी
चाहिए गाढ़े दिनों के लिए
इसके बिना
प्यार नहीं किया जा सकता
गीत नहीं रचे जा सकते
जूझा नहीं जा सकता जीवन में...' (पृ. 67-68)'

एक मुकम्मल कवि जब दोनों ही तरह की संवेदनाओं को पूरी शिद्दत से रखता है, तब उसके लिखे का पटल बड़ा होता है और वह एक बहुसंख्यक वर्ग से स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करता है। कविता, संवेदना की वह उदात्त भाषिक परिणति है, जो अपने रचाव के पूर्व कवि को और रचाव के बाद भावक को समान रूप से संपृक्त करती है। इसके अतिरिक्त, जहां किसी चिर-परिचित दृश्य को कुछ खास बनाना हो तो वहां कविता का सहारा लिया जाता है। या इसे यूं कहा जाए कि हमारी अपनी ही कोई चीज कविता के विशेष सज-धज के साथ जब हमारे सम्मुख आती है, तब उसका स्वरूप कुछ और निखरा हुआ और कुछ विशिष्ट सा होता है। रागात्मकता के तत्व सबसे अधिक कवि को छूते और प्रभावित करते हैं। प्रेम कविताएं हर कवि अपनी संवेदनाओं के अनुरूप लिखता है। अक्स रहां, इसमें टाइप्ड हो जाने के अपने खतरे भी होते हैं, क्योंकि यह एक ऐसा शाश्वत विषय है, जिसपर सर्वाधिक लिखा गया है। ऐसे में किस नए दृष्टिकोण से या किसी भिन्न अनुभूति के साथ कोई प्रेम कविता लिखना हमेशा चुनौतीपूर्ण होता है। इसके उदाहरण के रूप में हम प्रेम रंजन की 'ठोड़ी' जैसी कविता को ले सकते हैं। अधरों, आंखों, जुल्फों आदि पर कविताएं लिखी गई हैं। मगर ठोड़ी जैसे शरीर के हिस्से पर कविता

लिखना अपेक्षाकृत कुछ हटकर है और इसके पीछे कवि की अपनी रागात्मक/अनूठी दृष्टि है। कवि लिखता है -

'मुझे तो लगता
यह नींद में किसी कंधे पर उझकने से
बनी है या फिर
कोई तीखी निगाह चुभने से' (पृ. 74)

प्रेम में अनिवार्यतः दो लोगों का होना जरूरी है। ठोड़ी के बनने की यह कल्पना, कविता को एक उत्कर्ष प्रदान करती है। यहां स्त्री, पुरुष के कंधे पर आराम करती है या फिर कोई पुरुष उसकी सुंदरता को आंखों ही आंखों में पीता है। प्रेम रंजन की इस कविता को एक मांसल कविता कहना गलत न होगा। ऐसी कई कविताएं हमें इस संग्रह में पढ़ने को मिलती हैं, जहां कवि अपने अनुभवों का सामान्यीकरण करता चलता है। इन्हें पढ़ते हुए पाब्लो नेरूदा की ये पंक्तियां याद हो उठती हैं-

'But I love your feet
Only because they walked
Upon the earth and upon
The wind and upon the waters
Until they found me'

'रुंधा राग' जैसी कविताओं में व्यंग्य का रचाव, अपने तई बहुत दूर तक जाता है। लोक-कथाओं या जन-प्रचलित मुहावरों से कोई सिरा पकड़कर, कवि, गदहे के माध्यम से अपनी बात रखता है। एक परिश्रमी और थके-हारे आम आदमी का दर्द इसमें स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है। कवि लिखता है-

'कभी लोटता बैसाख में
पांव पीटता अलबलाता
भीड़ में अकेले भर्राए स्वर में
चाहता अपने दुख को गाना' (पृ. 115)

मगर वह ऐसा नहीं कर पाता है। और उसकी इस बेबसी को कवि यूं समझता है-

'गला रुंधा है
इसलिए गधा है
या गधा
इसलिए गला रुंधा...' (पृ. 115)

गंधर्व के रूपक के बहाने कवि एक बड़ा तंज कसता है। अपने काम को तत्पर या समर्पित लोगों का अक्सरहां समाज में उपहास उड़ाया जाता है, कवि का मंतव्य स्पष्ट है। हाशिए पर रह रहे लोगों को लेकर कई और कविताएं हमें इस संग्रह में देखने को मिलती हैं। कहीं ब्याही हुई बेटी का दर्द ('पाती', 'अरजी' जैसी कविताएं) हमें देखने को मिलता है तो कहीं रेल की पटरियों के किनारे रहते लोगों की जीवन-शैली ('रेल की पटरियों के किनारे जिनके घर हैं') को चित्रित किया गया है। 'आलू दम' कविता को पढ़ते हुए यह अनुभूति होती है कि यह कविता, एक साथ मानो बड़े और बच्चों दोनों के लिए लिखी गई हो। आलू पर लिखी इस कविता में अलग-अलग

कहा जा सकता है कि ये कविताएं, इस अर्थ में खरी और स्थायी हैं। पाठकों को बार बार इन कविताओं की ओर लौटने और इन्हें पढ़ने-गुनने का मन करता है। प्रेमरंजन अपनी कविताओं में बतकही के अनूठे रस को व्यंजित करने के लिए भी जाने जाएंगे। यह बतकही कहीं और से नहीं, बल्कि चिर-परिचित भारतीय देशजता से आई हुई है, जिसमें हमारी लोक-संस्कृति के कई जाने-माने आस्वाद हैं।

अनुच्छेदों में कई महत्वपूर्ण बातें, बड़े रोचक ढंग से कही गई हैं। आलू की उपादेयता और सर्वसुलभता को लक्षित करता कवि इसे एक ईश्वर के रूप में देखता है-

'एक दृश्य ईश्वर
जिसे छुआ जा सके
महसूस किया जा सके
जिसकी ऊष्मा को
बाहर और भीतर' (पृ. 90)

प्रेम रंजन का अभ्यस्त कवि, हमारे देखे और भोगे को हमें कुछ विशिष्ट ढंग से दिखाता और उसका अनुभव कराता है। यह किसी सधे हुए कवि का काम है और किसी सच्ची कविता का हासिल। लोक के जड़ों से सिंचित उनकी कविताओं का स्वर जितना अपनत्व लिए हुए है, उतना ही विविधवर्णी भी। वे अपनी कविताओं में कई प्रयोग भी करते हैं। भाषा और शिल्प दोनों ही स्तरों पर। 'झ पर झूठमूठ दो कविताएं', 'हवाई चप्पल' जैसी कविताएं अपने रचाव में विशिष्ट हैं। अगर हम, उनके काव्य-जगत पर जरा नजर दौड़ाएं, तो हमें यह समझते देर नहीं लगती कि वे एक सहज और रागधर्मी कवि हैं। उनकी कई कविताएं स्वतः स्फूर्त हैं और उनमें अक्सरहां शोर में तब्दील होती अनावश्यक मुखरता नहीं दिखतीं। उनकी कविताएं, स्वयं को वाचाल होने से रोक लेती हैं। ग्रामीण और कस्बाई परिवेश का चित्रण, उनकी कविताओं में बड़े आत्मीय रूप में हो सका है। वहां भी समय के हाथों होने वाले विभिन्न बदलावों को उन्होंने आवाज देने की कोशिश की है। इस कोशिश में कई देखी-अदेखी बातों पर हमारा ध्यान जाता है। कभी घर में पुराने सामानों को देखकर कवि को 'बुजुर्ग' याद आते हैं तो अपने पहले सफेद बाल को देखकर उसे अपना बचपन ('दूधियापन' कविता) याद हो आता है। परिवर्तनों के इस 'ओवरलैपिंग' में प्रौढ़ कवि अपने बालपन में पहुंच जाता है, जब पहली बार उसके मसूढ़े में दूध के दांत आए थे। वह भी एक दूधिया नवीनता थी, जब वह अपने जीवन के पायदानों पर चढ़ रहा था और जब वापस वह अपने यौवन की सीढ़ी से उतरना शुरू करता है तब पुनः वह उसी दुधिएपन का साक्षात्कार करता है। प्रेम रंजन का कवि अपनी अंतर्यात्रा में इस आत्मिक अनुनाद को सुनता आगे बढ़ता है। रामविलास शर्मा ने अपने निबंध और इसी नाम से चर्चित अपने निबंध-संग्रह 'परंपरा का मूल्यांकन' में उचित ही लिखा है, 'साहित्य मनुष्य के संपूर्ण जीवन से संबद्ध है। आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप में भी अपना जीवन बिताता है। साहित्य में उसकी बहुत सी आदिम भावनाएं प्रतिफलित होती हैं, जो उसे प्राणिमात्र से जोड़ती हैं। इस बात को बार-बार कहने में कोई हानि नहीं है कि साहित्य विचारधारा मात्र नहीं है। उसमें मनुष्य का इंद्रिय-बोध, उसकी भावनाएं, आंतरिक प्रेरणाएं भी व्यंजित होती हैं। साहित्य का यह पक्ष अपेक्षाकृत स्थाई होता है।'

कहा जा सकता है कि ये कविताएं, इस अर्थ में खरी और स्थाई हैं। पाठकों को बार बार इन कविताओं की ओर लौटने और इन्हें पढ़ने-गुनने का मन करता है। प्रेमरंजन अपनी कविताओं में बतकही के अनूठे रस को व्यंजित करने के लिए भी जाने जाएंगे। यह बतकही कहीं और से नहीं, बल्कि चिर-परिचित भारतीय देशजता से आई हुई है, जिसमें हमारी लोक-संस्कृति के कई जाने-माने आस्वाद हैं। 'चांद पर चना' जैसी कविताएं इस संदर्भ में खास तौर से उद्धृत की जा सकती हैं। यहां लोक संस्कृति अपनी पूरी समृद्धि और सज-धज के साथ उपस्थित है। यहां चने से बनने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों और मुहावरों को एक साथ रखकर कवि अपनी बाल सुलभ कल्पनाओं और अपने कुछ 'विजार्ड' से दिखते विचारों के माध्यम से कई बातें रखता है।

एकाधिक विधाओं में सक्रिय प्रेम रंजन के इस संग्रह की कविताएं वर्तमान हिंदी कविता के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति से हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। सरल और बोलचाल की भाषा में लिखी ये कविताएं हमारे चिर-परिचित अनुभवों को ही एक विशिष्टता प्रदान करती हैं।

मीरां का रचना संसार

पल्लव

साहित्यकार

संपर्क :
फ्लेट न. 393 डी.डी.ए.
ब्लॉक सी एंड डी, कनिष्क
अपार्टमेंट,शालीमार बाग,
नई दिल्ली-110088
मो. 8130072004

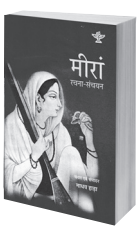

पुस्तक :
मीरां रचना संचयन
संपादक :
माधव हाड़ा
प्रकाशक :
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठः 208
मूल्यः ₹ 200

मीरां के जीवन और समय पर गंभीर पुस्तक 'पचरंग चोला पहन सखी री' के लेखक माधव हाड़ा ने साहित्य अकादेमी के लिए 'मीरां रचना संचयन' तैयार किया है जिसमें मीरां के चुने हुए 316 पद हैं। माधव हाड़ा ने संचयन के साथ एक भूमिका लिखकर मीरां के जीवन और काव्य पर भी आवश्यक विवेचन किया है। राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के गहरे जानकार डॉ हाड़ा ने यहां पुरोहित हरिनारायण, नरोत्तम स्वामी, कल्याणसिंह शेखावत तथा स्वामी आनंद स्वरूप द्वारा मीरां के पदों के संग्रहों से पद चुने हैं। डॉ हाड़ा की उदार और समावेशी दृष्टि ने इस संचयन को खास बनाया है। वे मीरां के पदों के पूर्व संग्रहकर्ताओं को भूमिका में याद करते हैं और उन पर हुए महत्वपूर्ण अनुसंधानकताओं का उल्लेख भी करते हैं। यह उदार और समावेशी दृष्टि संचयन में आए पदों के चयन में भी मौजूद है।

भक्ति काल की कवि मीरां इधर पुनर्नवा हो गई हैं। स्त्री विमर्श के उत्साह और आवेग में मीरां की पुनर्खोज उत्साहित करने वाली है। अस्मिता के अतिरिक्त आग्रह में उनके व्यक्तित्व की चमक से प्रभावित होकर अनेक बातें की गईं लेकिन उनके काव्य संसार पर गहरी अंतर्दृष्टि से अध्ययन अभी भी शेष है। उनकी कविता के मर्म को समझने में कई मुश्किलें हैं जिसमें पहली बड़ी मुश्किल उनकी कविता के एक सर्वमान्य पाठ का न होना है। मीरां की कविताओं के हस्तलिखित पाठ अधिकांशतः अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के हैं और ये लोक स्मृति पर आधारित हैं। इसके चलते इनमें बहुत वैविध्य और भिन्नता विद्यमान है। ये राजस्थानी के साथ गुजराती, ब्रज आदि भाषाओं में मिलते हैं और इनमें इन भाषाओं का मिलाजुला रूप भी मिलता है। पद्मावती शबनम ने अपने संग्रह में मीरां के एक ही पद के भिन्न भिन्न भाषाओं के अनेक पाठ प्रस्तुत किये थे जिनसे मीरां की कविता की गहरी लोक व्याप्ति का अनुमान किया जा सकता है। मध्यकालीन संत भक्तों से मीरां की पृथकता और विशिष्टता इस अर्थ में भी है कि उन्होंने न किसी पंथ में दीक्षा ग्रहण की और न अपना कोई नया पंथ - संप्रदाय बनाया। ऐसे में उनकी रचनाओं को संगृहीत करने और सुरक्षित रखने का काम भी लगभग नहीं हुआ। हिंदी विभागों में मीरां की जिन कविताओं को पढ़ाए जाने का चलन है उनका व्यवस्थित संग्रह भक्ति साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने किया था लेकिन वे भी इस द्वंद्व में थे कि मीरां को भक्त अथवा संत किस कोटि में रखें। इसी तरह जिस हस्तलिखित प्रति के आधार पर उन्होंने अपनी पदावली तैयार की उसका पाठ भी सर्वथा निर्दोष नहीं था। इन तमाम कारणों से मीरां की कविताओं की प्रामाणिक पदावली की तलाश बनी हुई है। मीरां के साहित्य के अनुसंधानकर्ता मनीषी पुरोहित हरिनारायण द्वारा तैयार मीरां बृहत्पदावली को राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने प्रकाशित किया था जिसमें 662 पद ही हैं।

मीरां के जीवन और समय पर गंभीर पुस्तक 'पचरंग चोला पहन सखी री' के लेखक माधव हाड़ा ने साहित्य अकादेमी के लिए 'मीरां रचना संचयन' तैयार किया है जिसमें मीरां के चुने हुए 316 पद हैं। डॉ. माधव हाड़ा ने संचयन के साथ एक भूमिका लिखकर मीरां के जीवन और काव्य पर भी आवश्यक विवेचन किया है। राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के गहरे जानकार डॉ. हाड़ा ने यहां पुरोहित हरिनारायण, नरोत्तम स्वामी, कल्याणसिंह शेखावत तथा स्वामी आनंद स्वरूप द्वारा मीरां के पदों के संग्रहों से पद चुने हैं। उन्होंने भूमिका में लिखा है, 'अधिकांश प्रचलित संकलनों में मीरां के पदों को प्रेम, विरह, भक्ति, उपालंभ, विनय, ज्ञान, चरित्र आदि भाव संज्ञाओं में वर्गीकृत या विभाजित किया गया है। यह पाठ को पहले से किसी अर्थ के खूंटे से बांध देने जैसा है, इसलिए यहां ऐसा नहीं किया गया है। यहां पद अकारादि क्रम से हैं और पाठक उनका अपना अर्थ करने के लिए स्वतंत्र हैं। मीरां के पद सदियों तक लोक स्मृति में रहे हैं

'मीरां की कविता उसके समकालीन संत-भक्तों से बहुत अलग और खास किस्म की है। उसकी कविता में जगत और जीवन का निषेध उस तरह से नहीं है, जैसा कि मध्यकालीन संत भक्तों के यहां है।'

और इस कारण इनमें इधर-उधर बहुत हुआ है, इसलिए इनमें भावों की आवृत्ति बहुत है। कहीं-कहीं तो पदों के पूरे चरणों की आवृत्ति है। आवृत्ति के बावजूद पद में कोई नया भाव या प्रसंग है तो उसे यहां लिया गया है।' इन पदों की भाषा के संबंध में डॉ हाड़ा का कथन है, 'पदों में शब्दों की वर्तनी में एकरूपता नहीं है। एक शब्द एक पद में जिस तरह से है दूसरे पद में उस तरह से नहीं है। शब्द को कोमल और मधुर करने या प्रवाह में ढालने के लिए विकृत करना राजस्थानी सहित कई देशभाषाओं का स्वभाव है। मीरां के पदों में भी यह बहुत है। यहां इसीलिए देस देसलड़ो और प्रीत प्रीतड़ी हो गए हैं।' हाड़ा मीरां के पदों में मिलने वाली टेर या टेक को भी आवश्यक मानते हैं और इसे बौद्धों के चर्या गीतों से आई परंपरा से जोड़ते हैं।

हाड़ा ने परिश्रमपूर्वक पदों का चयन किया है और प्रत्येक पद के साथ पद में आए कठिन या अप्रचलित शब्द का अर्थ भी दे दिया है। मीरां के घटनापूर्ण जीवन से संबंधित प्रचलित-अप्रचलित पदों के साथ उन्होंने उदा -मीरां संवाद वाले पद भी इस संचयन में दिए हैं जिनमें स्त्री अभिव्यक्ति के सुंदर रंग आ गए हैं। उदा. मीरां की ननद थी और मना जाता है कि अपनी भाभी के वैराग्यपूर्ण व्यवहार से अन्य परिवारजनों की तरह वह भी अप्रसन्न थी। इन पदों में वह अपनी भाभी से खरी-खोटी कहती हैं और मीरां युक्तिसंगत उत्तर देती हैं। भूमिका में डॉ हाड़ा ने लिखा है, 'मीरां की कविता उसके समकालीन संत-भक्तों से बहुत अलग और खास किस्म की है। उसकी कविता में जगत और जीवन का निषेध उस तरह से नहीं है, जैसा ने मध्यकालीन संत भक्तों के यहां है। उसकी कविता में दृश्य और मूर्त का उत्साहपूर्ण आग्रह है और वह अपनी ऐंद्रिक संवेदनाओं और कामनाओं को खुलकर खेलने की छूट देती है।' वे स्पष्ट करते हैं कि जहां 'मध्यकालीन संत भक्त ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या की लोकप्रिय और लगभग मान्य धारणा में सहज विश्वास के कारण लोकोत्तर के आग्रही थे। उनकी कविता में यह लोकोत्तर ही केंद्रीय सरोकार है, लेकिन मीरां की कविता में वस्तु जगत बहुत सघन और व्यापक रूप में मौजूद है। नदी, तालाब, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, हवा, बिजली, धरती, आकाश, बादल, बरसात, जंगल, समुद्र, महल, अटारी, वस्त्र, आभूषण आदि मीरां की कविता में जिस आग्रह और उत्साह के साथ आते हैं, वैसे किसी और मध्यकालीन संत-भक्त की कविता में नहीं आते। मीरां की कविता में इंद्रिय संवेदनाओं और कामनाओं की भी अकुंठ और निर्बाध

हाड़ा का विनम्र प्रयास रहा है कि संचयन में मीरां की कविता के सब रंग आ जाएं और एक उपयोगी-सर्वस्वीकृत चयन तैयार हो सके। विश्वविद्यालयी पाठ के लिहाज से इस तरह के चयन की गहरी आवश्यकता को ऐसी ही उदार दृष्टि पूरा कर सकती थी। कठिन शब्दों के अर्थ देने के साथ ही यह संचयन सामान्य पाठकों के लिए भी काम का बन गया है। साहित्य अकादेमी का भी आभार किया जाना चाहिए कि मध्यकाल के लगभग अकेले स्त्री स्वर को देर से सही किंतु सम्मानजनक ढंग से प्रस्तुत किया।

अभिव्यक्ति है।'

अस्मितावाद के जिन आग्रहों के कारण इधर मीरां की कविता फिर चर्चा में है उनमें स्त्री व्यक्तित्व की उद्घोषणा सबसे प्रबल है। मीरां की कविताएं इसका उदाहरण है। यह उदाहरण इसलिए भी प्रभावी और आकर्षक है कि मध्यकालीन सामंती राजसत्ता के समक्ष मीरां अपनी बात कहने का साहस रखती हैं। दूसरी बात यह है कि मेवाड़ राजघराने के संबंध में यह भूलना नहीं चाहिए कि वह उत्तर भारत का सबसे प्रभावशाली राजघराना था और यदि खानवा के मैदान में मीरां के ससुर राणा सांगा की पराजय न हुई होती तो वे निश्चित ही दिल्ली के सम्राट होते। ऐसे पुराने और प्रतापी राजवंश की ज्येष्ठ बहू का साधुसंगत करना तथा राणा को चुनौती भरे स्वर में संबोधित करना नए उत्साह में बहुत मादक है। डॉ. हाड़ा ने संचयन में मीरां के इन पदों को भी स्थान दिया है -

राणो म्हारो कांई कर लेसी, मीरां छोड़ दई कुल लाज।

और

सीसोद्यो राणा, प्यालो महान क्यूं रे पठायो

भली- बुरी तो मैं नहिं किन्हीं, राणो क्यों है रिसायो

इसी तरह आत्म का कथन मीरां की कविता का आधुनिक पक्ष है जो मध्यकालीन कवियों में उन्हें कबीर के समकक्ष ले जाता है। डॉ. हाड़ा ने लिखा है, 'मध्यकालीन संत-भक्त अपने कविता में अपनी वैयक्तिक पहचान और अपने सांसारिक संबंधों के संबंध में मौन हैं, जबकि मीरां की कविता में यह सब आग्रहपूर्वक मौजूद है। मीरां संत-भक्तों की तरह न इनके प्रति उदासीन है और न इनको अनदेखा करती है। संत भक्त अपनी स्थानिक पहचान को लेकर सजग नहीं है लेकिन मीरां इसको याद रखती है। वह कुल की मर्यादा छोड़ती है लेकिन अपनी पहचान नहीं छिपाती।' उन्होंने ऐसे कुछ सुंदर पद संचयन में दिए हैं -

साध संग मोहि प्यारा लागे, लाज गई घूंघट की

पीहर मेड़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोइ चटकी।

और

इक कुल राणा त्यारूं, आपणौं, दूजो राइ राठौड़

तीजो त्यारूं राणा मेड़तो, चौथो गढ़ चित्तौड़।

हाड़ा की उदार और समावेशी दृष्टि ने इस संचयन को खास बनाया है। वे मीरां के पदों के पूर्व संग्रहकर्ताओं को भूमिका में याद करते हैं और उन पर हुए महत्वपूर्ण अनुसंधानकर्ताओं का उल्लेख भी करते हैं। यह उदार और समावेशी दृष्टि संचयन में आए पदों के चयन में भी मौजूद है। हाड़ा का विनम्र प्रयास रहा है कि संचयन में मीरां की कविता के सब रंग आ जाएं और एक उपयोगी-सर्वस्वीकृत चयन तैयार हो सके। विश्वविद्यालयी पाठ के लिहाज से इस तरह के चयन की गहरी आवश्यकता को ऐसी ही उदार दृष्टि पूरा कर सकती थी। कठिन शब्दों के अर्थ देने के साथ ही यह संचयन सामान्य पाठकों के लिए भी काम का बन गया है। साहित्य अकादेमी का भी आभार किया जाना चाहिए कि मध्यकाल के लगभग अकेले स्त्री स्वर को देर से सही किंतु सम्मानजनक ढंग से प्रस्तुत किया।

निबंध

सूरज को चुनौती देता पलाश!

डी. एन. प्रसाद

समालोचक

संपर्क :
प्राध्यापक, गांधी एवं शांति अध्ययन, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 9420063304

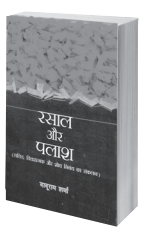

पुस्तक :
रसाल और पलाश
लेखक :
डॉ. दादूराम शर्मा
प्रकाशक :
यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ : 349
मूल्य : ₹ 1400

चैतन्य चिंतक दादूराम शर्मा रस-सिक्त होकर अपने पलाश रूपी जीवन को जी रहे हैं और सुधी पाठक को रसालता दे रहे हैं। विचारशील चिंतक डॉ. दादूराम शर्मा के निबंध संकलन में प्रस्तुत 46 निबंधों में 29 निबंध उनके अनुसार विचारात्मक निबंध हैं जबकि इस 29 निबंध में 'वंदनीय मातृत्व' को उन्होंने संस्मरण कहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विद्यानिवास मिश्र के बाद की परंपरा में नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, श्रीराम परिहार, श्यामसुंदर दुबे, कुबेरनाथ राय की श्रृंखला में दादूराम शर्मा का नामांकन होता है।

दादूराम शर्मा को जिस साहित्यिक विधा के लिए जाना जाता है; वह है, निबंध! वह विचारपूर्ण चिंतन की पदबंध रचना जो बंधन में होकर भी निःबंध है। निबंधों के विविध आयामी सरोकारों में अगर किसी की शाश्वती निबंध रचना जीवंत हुई है तो वह उसकी लालित्य-गारिमा का गौरव ही है। इससे इतर निबंध रचना की वैचारिकी समयकाल की शिला पर सरकती रहती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विद्यानिवास मिश्र के बाद की परंपरा में नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, श्रीराम परिहार, श्यामसुंदर दुबे, कुबेरनाथ राय की श्रृंखला में दादूराम शर्मा का नामांकन होता है। परंतु दादूराम शर्मा की सद्यः प्रकाशित निबंध संकलन की पुस्तक 'रसाल और पलाश' मुझे उनकी जल्दबाजी में निबंधों को समेटने जैसा लगता है, इससे उनकी गौरव-गरिमा की बचपना उभरती जान पड़ती है। 46 निबंधों की भारी भरकम पुस्तक उनका निबंध-संचयन अगर है तो ठीक है, फिर भी संचयन की कुछ नियामकता होती है!

जैसा कि उन्होंने रसाल और पलाश शीर्षक में कोष्ठक में दिया है-ललित, विचारात्मक और शोध निबंध का संकलन। बेहतर तो यह होता कि उक्त तीन विधात्मक निबंधों की तीन पुस्तक सुंदर संयोजन में बन सकती थी जो पाठक, शोधार्थी और चिंतक के मनः और धनः के दायरे में लोकव्यापी रचना का बहुश्रुत पाठ बन सकती थी। 349 पृ. की समीक्ष्य पुस्तक में कुल आठ ललित निबंध हैं जिनके लिए कुल लगभग 100 पृष्ठ भूमिका वगैरह देकर सवा सौ पृष्ठ की अच्छी लालित्य रस की शाश्वत ललित निबंध की पुस्तक समाहित हो जाती। शर्मा जी ने इन्हीं ललित निबंधों में 'रसाल और पलाश' की बानगी प्रस्तुत की है जो इनकी निबंध विधा का नैवेद्य कहा जा सकता है। पलाश का फूल जो टेसू, ढाक, केसु, किंसुक आदि नाम संज्ञा से विहित है। ढाक, टेसू तो लोक बिंब में प्रचलित है। इसकी बिबिंत - व्यसना जिजीविषा का चरम है। पल+आस-पलास अर्थात् एक क्षण की भी आस न छोड़े; जो जीने की दुर्दम्य इच्छा के साथ पल्लवित है। चिलचिलाती धूप में पलाश अपनी रंगीनी के साथ तन कर खड़ा रहता है मुस्कराते हुए सूरज की तेज के साथ! यह नैसर्गिकता मानव मन की चेतना को कठिन समय में भी चैतन्य बने रहने की बानगी देती है। काश! मनुष्य प्रकृति के करीब रहता और नैसर्गिक बना रहता। पर्यावरण-समस्या की कोई अवधारणा उपजित नहीं होती और तब तो जीवन रसाल बन ही जाता अर्थात् रसपूर्ण जीवन सहृदय हो ही जाता है। प्रकृति की सीख शाश्वत है! युगयुगांतर, बशर्ते कि-

मन प्रकृति बानगी, बन सहृदय गीत गाए।
वसुंधरा की बांह में मनुज का मन रीत जाए।।

डॉ. दादूराम शर्मा ने अपने आठ ललित निबंधों की श्रृंखला में चंद्रोदय, माताभूमिः पुत्रेऽहं पृथिव्याः, संवेदना, रसाल और पलाश, होली, चातक, हंस, मंडूक के साथ करील-कानन में कूकती कोयल तथा रमणीयता को ललित निबंध क्यों नहीं माना है जो प्रकृति की रस पुकार है जीवन रस धोलने के हेतु!

समीक्ष्य पुस्तक में सात शोध निबंध हैं- कालिदास के काव्य में नायिकागत पूर्वराग, कालिदास का नारी-दर्शन, कालिदास का सांस्कृतिक अवदान, कालिदास के काव्य में वन इसके अलावे भारत के सांस्कृतिक मूल्य, स्वच्छंदतावाद, राजत्व की भारतीय अवधारणा और रामराज्य। दरअसल,

शोध-निबंध, निबंध की नैरंतर्यता से बाहर की पदबंध कला है, अतः ये शोध निबंध प्रस्तुत निबंध की पुस्तक में अनुकूल नहीं हैं। फिर भी ये शोध निबंध शोधार्थी व शिक्षकों के लिए उपादेय हैं और चूंकि डॉ. दादूराम शर्मा का एक महत्वपूर्ण शोध-कार्य 'संस्कृत की कालजयी कृतियां' है जिसके लिए उन्हें कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन ने भोज पुरस्कार से पुरस्कृत किया है अतः कालिदास के राग पर डॉ. दादूराम शर्मा की समालोचना अस्तुत्य है। कालिदास का नायिकगत पूर्वराग हो या नारी-दर्शन; डॉ. शर्मा स्त्रैणभाव से भारतीय मूल्य-व्यवस्था की सांस्कृतिक समालोचना करते हैं। एक प्रासंगिक बात कितनी गरिमा प्रदान करती है जब डॉ. शर्मा राजत्व की भारतीय अवधारणा और रामराज्य की चर्चा करते हैं। गांधी भी इसी रामराज्य की परिकल्पना का स्वराज्य चाहते हैं; क्या इससे लोकतंत्र के लोकतत्व का लालित्य का रसबोध नहीं होता! समकालीन प्रजातंत्र के हेतु चाहे राम हों, गांधी हों या डॉ. दादूराम शर्मा; उसी राजत्व में प्रजातंत्र की भारतीय अवधारणा देखने के आग्रही हैं; पर अफसोस कि आज का मनुज निजत्व में निमग्न है!

बहरहाल, निबंध की नैसर्गिकता लालित्य में हैं और निबंध की साहित्यिकी भी ललित होने में है तथा शोध-निबंध तो पदबंध बांधने की कला है, स्वतः स्फूर्त कुछ भी नहीं और विचार की वैचारिकी में विचारात्मक विचार की प्रस्तुति विचारात्मक निबंध की श्रेणी बनाती है जिसमें समसामयिकता के संगुंफित होने का ज्यादा लोभसंवरण होता है। हालांकि जीवन विचार के लिए इस वैचारिक साहित्य की भी आवश्यकता है परंतु प्रयोग और प्रयोगशीलता में ज्यादा प्रगतिवादी विचार विछिन्न भी हो जाते हैं। अस्तु विचारशील चिंतक डॉ. दादूराम शर्मा के निबंध संकलन में प्रस्तुत 46 निबंधों में 29 निबंध उनके अनुसार विचारात्मक निबंध हैं जबकि इस 29 निबंध में 'वंदनीय मातृत्व' को उन्होंने संस्मरण कहा है। इस दृष्टिकोण से उनके 28 विचारात्मक निबंध समीक्षक के लोचन में आते हैं आलोचना के हेतु! तो पहली बात कि विचारात्मक निबंध की जगह वैचारिक निबंध कहना ज्यादा सुसंगत है विचारात्मक की अपेक्षा। विचारात्मक शुष्क प्रतिभूति देता है, वैचारिक मिश्र और माधुर्य! अस्तु, वैचारिक निबंध की प्रतिभूति सत् साहित्य की अवगाहना का उत्स देता है जो साहित्य मन को राग से इतर जीवन का जैविक मनबोध कराता है, यही साहित्य का उद्देश्य भी है जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी उद्गारित करते हैं। परिप्रेक्ष्य दादूराम शर्मा जी के इन 28 विचारात्मक निबंधों की

डॉ. दादूराम शर्मा ने ललित निबंधों में 'रसाल और पलाश' की बानगी प्रस्तुत की है जो इनकी निबंध विधा का नैवेद्य कहा जा सकता है। दादूराम शर्मा के इन 28 विचारात्मक निबंधों की श्रृंखला में ऋतुराज वसंत, ऋतुओं में सर्वोत्तम शरद, कारागार और साहित्य सृजन, कवि-दृष्टि में हेमंत, जिजीविषा, ग्राम-जीवन, राम मूर्तिमान धर्म हैं वैचारिक निबंध की श्रेणी में आते हैं जिसमें डॉ. शर्मा की शिल्प-दृष्टि वाग्-वैभव की वैचारिकता का स्पर्श करती है।

श्रृंखला में ऋतुराज वसंत, ऋतुओं में सर्वोत्तम शरद, कारागार और साहित्य सृजन, कवि-दृष्टि में हेमंत, जिजीविषा, ग्राम-जीवन, राम मूर्तिमान धर्म हैं वैचारिक निबंध की श्रेणी में आते हैं जिसमें डॉ. शर्मा की शिल्प-दृष्टि वाग्-वैभव की वैचारिकता का स्पर्श करती है। शरद, वसंत, हेमंत की रागात्मकता में मानवीय सद्व्यवहार की पावसता का परिचय होता है, जहां मन-विवर आह्लाद के आगोश में विश्राम पाता है। जिजीविषा और ग्राम-जीवन एक-दूसरे के सहोदर हैं क्योंकि ग्राम-जीवन जिजीविषा का पोषक है जो राम को मूर्तिमान धर्म अर्थात् कर्तव्य-बोध का कारक मानता है और उस कर्तव्य-पालन में अपने जीवन की सार्थकता समझता है यथा राम का जीवन भी प्रजा-पालक धर्म के ही निमित्त था, तभी तो रामराज्य की परिकल्पना पर्याय बनी गांधी के लिए।

डॉ. दादूराम शर्मा की वैचारिकी 'कारागार और साहित्य सृजन' अभिभूत करती है। सच है कि दुनिया में बड़े कारगर साहित्य का सृजन कारागार में ही हुआ है। गांधी हों, नेहरू हों, मंडेला हों या मैथिलिशरण गुप्त की कविता 'कैदी और कोकिल' हो; कारगार की वेदना-संवेदना जब समय की वैचारिकी के साथ एकागार हुई है, समय के श्रेष्ठ साहित्य का सृजन हुआ है। डॉ. शर्मा की नैबंधिक-दृष्टि इस ओर गई, इसके लिए उन्हें साधुवाद!

बाकी के निबंधों में जल, जंगल, जमीन, जीवन और साहित्यकार की भूमिका, राष्ट्रीय चेतना में साहित्य की भूमिका, हमारी राष्ट्रभाषाः स्वरूप, समस्याएं और संभावनाएं निबंध को साहित्यिक कसौटी से परे समस्यामूलक शोध-निबंध की श्रेणी में रखे जा सकते हैं जो शोधार्थियों को दिशा प्रदान करेंगे। कुल मिलाकर शमार्जी के लगभग सभी निबंध रसाल का रसपाक कराते हैं लेकिन वैचारिक निबंधों की एक अलग पुस्तक का प्रणयन हो सकता है। एतदर्थ समीक्ष्य पुस्तक 'रसाल और पलाश' डॉ. दादूराम शर्मा के निबंधों का यह संकलन उनकी जीवंत जिजीविषा का प्रतिकात्मक पलाश है उनके जीवन का! यथा ''पतझड़ से मृतप्राय-सी लगने वाली इसकी शाखाओं में लाल-गुलाबी पुष्प-गुच्छों के रूप में नवजीवन फूट पड़ा है आपाद मस्तक... एक-एक फूल आपको शायद ही कहीं दिखे। यह तो मिल-जुलकर गुच्छों में फूलता है। उल्लास और ऐश्वर्य की कैसी समष्टिगत अभिव्यक्ति है! पलाश का रोम-रोम हँस रहा है। सच्चा आनंद वही है, जो हमारे रोम-रोम से फूटता है और हमारे अंग-अंग को रस-सिक्त कर देता है।'' (पृ. 65-66) यह निदेशना मानवीय धरातल के हेतु प्रकृति की तरफ से स्फूर्त ऊर्जा है जिसे चैतन्य चिंतक दादूराम शर्मा रस-सिक्त होकर अपने पलाश रूपी जीवन को जी रहे हैं और सुधी पाठक को रसालता दे रहे हैं। प्रकृति की अजब-गजब की जिजीविषा अगर मनुष्य अंगीकार कर ले तो उसकी प्राणवायु शताधिक से ऊपर अर्थात् गांधी की जिजीविषा में सवा सौ वर्ष का नैसर्गिक आनंद-दर्शन प्राप्त कर लेगा। पलाश गजब-अजब की जीवंत ताकत! खिलेगा चिलचिलाती धूप में अपनी चटक लाली के साथ सूरज के ताप को चुनौती देता हुआ सुखी मृतप्राय टहनियों से! क्या प्रकृति का यह मानवीकरण मनुष्यता के लिए नहीं है-

टेसू के फूल खिले, मन बौराये।
चटक धूप चिल-चिल में, छाया-सी भाये।।

पुस्तक की महक यही है!

कविता

कौन-सी नदी कहां डूब मरी ?

उमेश यादव

पत्रकार-कवि

संपर्क :
द्वारा-श्री आर.के. हलदार
हाउस नं. 5, पूर्वांशा नगर,
भाववादियां कला, होशंगाबाद
रोड, भोपाल-462026
(म.प्र.)
मो. 7385902236

साम्राज्यवाद के कई रूप हैं। एक रूप है बहुराष्ट्रीय कंपनियां। जिस देश की पूरी जिंदगी आक्रमणों से भरी पड़ी हो। आक्रमण भी ऐसे, जिनमें पुर्तगालियों से लेकर अंग्रेजों तक ने व्यापार को छिपे हथियार के रूप में इस्तेमाल किया हो, वहां साम्राज्यवाद के कई और रूप देखने बाकी हैं। हम चाहे कितने ही बड़े राष्ट्रवाद की बात करें। इस राष्ट्रवाद के दायरे को सिर्फ धर्म और संस्कृति तक सीमित नहीं रखा जा सकता। अपनी आजादी को केवल रोटी के सवाल तक भी सीमित नहीं रखा जा सकता।

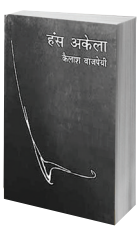

पुस्तक :
हंस अकेला
लेखक :
कैलाश वाजपेयी
प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2017
पृष्ठ : 135
मूल्य : ₹ 230

क्या हर महानगर को मेट्रो ट्रेन की जरूरत है? क्या हर नदी पर बांध जरूरी है? यदि नहीं तो विकास का संबंध केवल सत्ता से रह जाता है। उद्देश्य यही है कि करीबियों को कमीशन पर ठेके मिलते रहें। सरकार किसी की भी हो, फर्क नहीं पड़ता। जब से विकास के ठेके की होड़ लगी है, तब से यही होता आया है। कैलाश वाजपेयी की किताब 'हंस अकेला' इसी चेतावनी के साथ दस्तक देती है। कभी-कभी 35 पंक्तियों पर कविता की एक पंक्ति भारी पड़ती है। जैसे- 'कौन बताएगा, कौन-सी नदी कहां डूब मरी।' कैलाश वाजपेयी की कविताई में इस गुस्से की गूंज दूर तक सुनाई देती है। ये कविताएं विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति के विनाश पर चेताती हैं। पहली कविता है- 'राख।'

राख के अलावा कुछ रहा नहीं होने को
अब हम किसको हिसाब दें
इस धुंधकारी तबाही का
इक्कीसवीं सदी की शुरुआत पर
जब चित्त पड़ी हर कारीगरी
हंस गीत गा रही विकास का
कौन बताएगा, कौन-सी नदी कहां डूब मरी।

कवि की चिंता है कि जंगल का नष्ट होना केवल पेड़-पौधों का नष्ट हो जाना नहीं है। यह कई पहाड़ों, नदियों और पशु-पक्षियों का खत्म हो जाना भी है। इनसान अगर जंगल में डेरा डालने लगे तो जानवर कहां जाएंगे। खनिज के लिए जंगल की भूमि खोदी जा रही है। पहाड़ के पहाड़ धंसाए जा रहे हैं। इन पहाड़ी जंगलों में इनसानों की कॉलोनियां बसाई जा रही हैं। वन्य प्राणियों के घर कहां हैं। जैसे इस 'फक्कड़ मन मेरा' कविता में कहा है-

जैसे ही पारा चढ़ा एक बार
फूंक दिए मैंने सब जंगल
खा लिए ढेरों पखेरू
गला घोंटकर सारी नदियों का।

और 'गायब गौरय्या' कविता शहर में लहलहाते कांक्रीट के जंगल की ओर ध्यान खींचती है। याद कीजिए, पिछली बार आपने किसी गौरय्या को कब अपने घर के रौशनदान पर कुदकते देखा था। क्या हम अपने बच्चों को वह कविता सुनाने लिए आश्वस्त हैं, जिसमें कहा गया है- 'दाना चुगने आई चिड़िया।' इन पंक्तियों पर गौर करें।

आतंक के भी बेशुमार चेहरे होते हैं
शाम को ताला जब खोला लौटकर
घोंसला नुचा पड़ा था जमीन पर
और ईश्वर ऊपर कहीं कांव-कांव कर रहा था।

प्रकृति के विनाश की एक कविता और है- 'धरती मां'

हमने तुम्हें इतना निचोड़ा
कहीं का न छोड़ा
हमें माफ करना धरती मां
कई बार कोख से
कुलघाती भी जन्म लेते हैं।

इस धरती का हम पर कितना उपकार है। कुछ कर्ज हम

देख नहीं पाते। कुछ देखना नहीं चाहते। इसी पर एक कविता है- 'कर्ज'

सुबह-सुबह आए वे
कर्मचारी किसी बैंक के
वाहन उठा ले गए पड़ोसी का
कर्ज की किश्त न दे पाया था
मैं सोचने लगा अपने बारे में
क्या किया मैंने मां का
जिसने मुझे आने दिया दुनिया में
उफ मैं कैसा निर्लज्ज कर्जदार हूं
सूर्य का, पवन का, आकाश का
आज तक पाई न चुकाई मैंने
मैं उज्ज्वल कलंक जर्जर समाज का।
और इसी राग में एक मुक्तक भी-
पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा दिनों दिन
बर्फ हृदय हुए चले जा रहे लोग दिनों दिन।

साम्राज्यवाद के कई रूप हैं। एक रूप है बहुराष्ट्रीय कंपनियां। जिस देश की पूरी जिंदगी आक्रमणों से भरी पड़ी हो। आक्रमण भी ऐसे, जिनमें पुर्तगालियों से लेकर अंग्रेजों तक ने व्यापार को छिपे हथियार के रूप में इस्तेमाल किया हो, वहां साम्राज्यवाद के कई और रूप देखने बाकी हैं। हम चाहे कितने ही बड़े राष्ट्रवाद की बात करें। इस राष्ट्रवाद के दायरे को सिर्फ धर्म और संस्कृति तक सीमित नहीं रखा जा सकता। अपनी आजादी को केवल रोटी के सवाल तक भी सीमित नहीं रखा जा सकता। दुनिया में अभी बहुत कुछ ऐसा बाकी है, जो हमारी आजादी पर गिद्द निगाहें लगाए बैठा है। 'फकीरचंद' कविता इसी बहस को छेड़ती है।

खुश थे तुम देस राग गाने में मस्त
तुम्हें रहा मुगालता
गिद्दों की रुचि क्योंकर होगी भला
तुम्हारे साग-पात या चबेने पर।
यह बलि प्रसंग है फकीरचंद।
बिना रक्तपात का
सब स्वाहा होना है
इस अभिचारी यज्ञ में।

कवि के जीवन में रिश्तों का छायावाद भी है। गोया कि सभी के जीवन पर किसी ने किसी की छाया रहती ही है। 'छायावाक्' वही कविता है।

कैसी भी बर्फ हो
गल नहीं पाती मैं
जला नहीं पाती कोई आग भी
धूप के बिछौने पर सोती हूं सारा दिन
चंद्रमा की भी चहेती हूं।

कभी-कभी कोई व्याधि जीवन का हिस्सा बन जाती है। यह भी महसूस होता है कि यदि यह व्याधि खत्म हो गई तो जीवन में कुछ न कुछ अधूरा रह जाएगा। तमाम दर्द के बावजूद हम इस व्याधि को स्वीकार कर चुके होते हैं। यह व्याधि

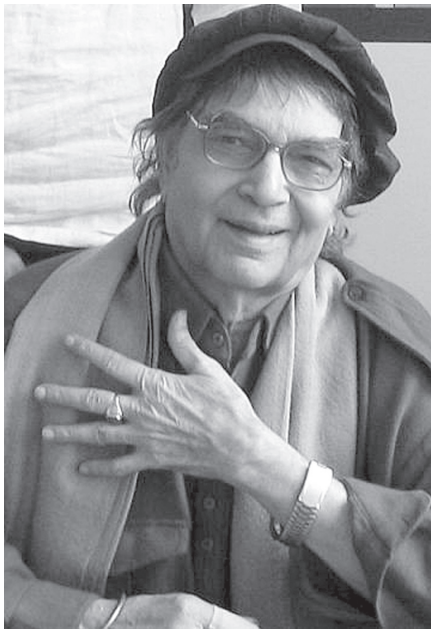

कवि की चिंता है कि जंगल का नष्ट होना केवल पेड़-पौधों का नष्ट हो जाना नहीं है। यह कई पहाड़ों, नदियों और पशु-पक्षियों का खत्म हो जाना भी है। इनसान अगर जंगल में डेरा डालने लगे तो जानवर कहां जाएंगे। खनिज के लिए जंगल की भूमि खोदी जा रही है। पहाड़ के पहाड़ धंसाए जा रहे हैं। इन पहाड़ी जंगलों में इनसानों की कॉलोनियां बसाई जा रही हैं। वन्य प्राणियों के घर कहां हैं।

हमारे साथ सोती है। हमारे साथ जागती है। हमसे ही शुरू होकर हम पर ही खत्म हो जाती है। जैसे- यह कविता 'सुबह-सुबह'

सुबह-सुबह
घर के भीतर वाले कक्ष में
तुड़ी-मुड़ी पड़ी अधम देह को
जगा रहा दर्द बाईं बांह का
उठो, सूर्यास्त हो रहा है।

गरीब की बेटियां कभी बच्ची नहीं रहतीं। वे जन्म लेते ही बड़ी हो जाती हैं। बचपन में ही उन पर कई जिम्मेदारियां लाद दी जाती हैं। बेटी बड़ी हो तो वह घर में दूसरी मां का किरदार निभाती है। इनमें से कई कभी स्कूल की शक्ल भी नहीं देख पातीं, लेकिन वे संवेदना का पाठ खूब समझती हैं। एक कविता है- 'गुम आत्मीयता'

ठोकर नहीं लगे इसलिए
शायद चल नहीं, रेंग रही थी
सही अर्थों में
पीठ पड़ी गठरी को देखा मैंने
गौर से
बस्ता तो नहीं था वहां किताबों का
इतनी कम उम्र और इतना बोझ पीठ पर?
पूछा मैंने पास जाकर
बोझ कहां यह तो
बीमार भाई है।

एक और कविता बेटी के हक में है, जो पौराणिक कथाओं की ओर खींचती है। दरअसल यह बेटी के बलिदान की कविता है।

लड़की जो एक युग-पुरुष को
बचाने की लीला में मारी गई
दूर के महल में
जन्म लेकर भी
मैं इस यशोदा की बेटी की आह को
एक नया शब्द-कोश देना चाहता हूं।

कवि के इस संग्रह में कुछ गीत भी हैं। एक दिलचस्प शायराना अंदाज 'डर' नाम की कविता में दिखता है, जो माार्क्सवाद से प्रभावित नजर आता है।

डर से बेखबर कोई नहीं
क्योंकि डर कोई खबर नहीं
मजहब की एक सिफत यह भी है
उस जैसा कोई जहर नहीं।

एक कविता है, जो जनश्रुतियों से इतर सीप के बनने की कहानी कहती है।

रेत का जर्रा फंस जाता है
भीतर ही भीतर
काया कसमसाती है
क्लेश कम करने की कोशिश में
बेहाल रोती है
छोड़ती सफेद द्रव्य
इस तरह मोती
बीमार सीप में पैदा होता है
न कि स्वाति नक्षत्र में गिरी बूंदों से।

और 'पांव' नाम की कविता का सबक है कि कोई प्राणी छोटा या बड़ा नहीं है। जीवन का आखिरी सत्य भी यही है।

ये पांव मेरे लिए अद्वितीय हैं
छू लेने दीजिए
क्या पता कल किन्हीं
औरों के कंधे पर पांव रखकर
चल पड़ें यही पांव
भीड़ पर कटाक्ष करते हुए।

'भुने चने' कविता की ये पंक्तियां थोड़े में बहुत कह जाती हैं-

मैंने जीवन में बड़ी-बड़ी
संपन्न कब्रें देखी हैं विश्वकर्मा को चिढ़ाती

हुईं।

और साहिर याद आते हैं- एक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक
मेरे महबूब तू कहीं और मिला कर मुझसे।

हमने ग्रह-नक्षत्रों पर विश्वास न करने वाले लोगों को जिज्ञासावश समाचारपत्रों में राशिफल पढ़ते भी देखा है। 'नियति' कविता की ये पंक्तियां देखें।

जैसे-जैसे
उम्र बढ़ती गई
पहचानने लगा
मंगल शनिश्चर बुध
शुक्र और गुरु को
उम्र के आखिरी पड़ाव पर
जब सारे संगी बिछुड़ गए
छत पर अंधेरे में पड़ा
फटी हुई आंखों से
तकता आकाश को
सुनता हूं एक ही गुहार
ग्रह नक्षत्रों से मुक्ति कहां?

कुछ कविताएं व्यवस्था पर सीधा वार करती नजर आती हैं। ये कविताएं भ्रष्टाचार के चक्र को भेदती हैं। कहती हैं कि सब मिले हुए हैं। किसे छोड़ेंगे, किसे माफ करेंगे जैसे यह कविता- 'देखा है!'

मैं जानता हूं
कोई भी व्यवस्था कहीं नहीं ले जाती
सिर्फ आदमी को नंगा भर करती है
मैं और बर्र और गौरय्या और छिपकली
सबके बीच कहीं एका है
मुझको अफसोस है
मैंने इस दुनिया को नंगा होते हुए देखा है।

और इसी बात को आगे बढ़ाती एक और कविता-'अभिमन्यु'

रंग भरा चाकू घुसेड़
खेल दिखलाने वाले नट में
और नेता की फटी हुई पाकेट में
एक सा छद्म नजर आता है।

'फालतू आदमी की व्यथा' कविता से कवि यह भी कहने की कोशिश में है कि उसके जैसे लोगों के लिए इस व्यवस्था में कहीं कोई जगह नहीं है।

सोचने वाली मशीनों के युग में
कभी नहीं सोचा था
इतना घातक होगा सोचना
वरना वही किया होता हमने भी
खाना और भोगना!

देश ने कई दंगे झेले हैं। धर्म के नाम पर रक्तपात देखा है। महान व्यक्तियों और ईश्वर के नाम पर मरने-मारने वालों पर कविता है-'मरना मारना।' यह कविता विभिन्न रंगों वाली दुनिया पर लगा स्याह दाग दिखाती है।

हमने गांधी को मारा
हमने ईसा को मारा
हमने सुकरात को मारा।
रहा ईश्वर उसे तो हम दिन-रात
बात-बात पर मारते हैं
यह अलग बात है कि वह मरता ही नहीं
हम ही मरते चले जाते हैं।

और कभी-कभी यही मरने मारने की ललक भीड़ बनकर सामने आती है। इस भीड़ के कई चेहरे हैं, लेकिन असली चेहरा हम देखना नहीं चाहते। तो देखते हैं इस 'भीड़' नाम की कविता को।

भीड़ के विषय में इतना तो है
वह अकेली नहीं होती
यह और बात है भीड़ में
सब अकेले ही होते हैं।

कवि उपभोक्ता संस्कृति पर भी कटाक्ष करने से नहीं चूकता।

अधखुले उरोज सेल्सगर्ल के
शहदीले बोल प्यारी-सी धमकी दोहराते
जो भी पृथ्वी पर जन्मा है खरीदार है।

कवि ने अपनी बिरादरी की भी सुध ली है। यह वह बिरादरी है, जिसकी संपत्ति का मोल सरस्वती पुत्र नहीं, लक्ष्मी पुत्र लगाते हैं। आज अंग्रेजी में लिखा हुआ निर्यात सामग्री है। हिंदी की किताबें देश में बिकने को तरसती हैं। कविता का शीर्षक है-'एक कवि था।'

किसी एक फक्कड़
और लाल बुझक्कड़ के बीच फंसा
कहते है- कोई एक कवि था
वह भी हिंदी का विचित्र जंतु है
मर खपकर कुछ शब्दों की एक माला बना भी ले
तब भी जरूरी है
कोई ठग बनारसी ठप्पा लगाए कि
माल बढ़िया है।

अंत में इतना कहना होगा कि ये कविताएं आज के दौर के तमाम फरेबों और दिखावों को ईमानदारी से देखने का सच्चा प्रयास हैं। कैलाश वाजपेयी की कविताएं थकती नहीं, वह दौड़ती हैं। वे उम्मीद नहीं जुटातीं, हिम्मत जुटाती हैं और प्रहार कर आगे बढ़ती हैं।

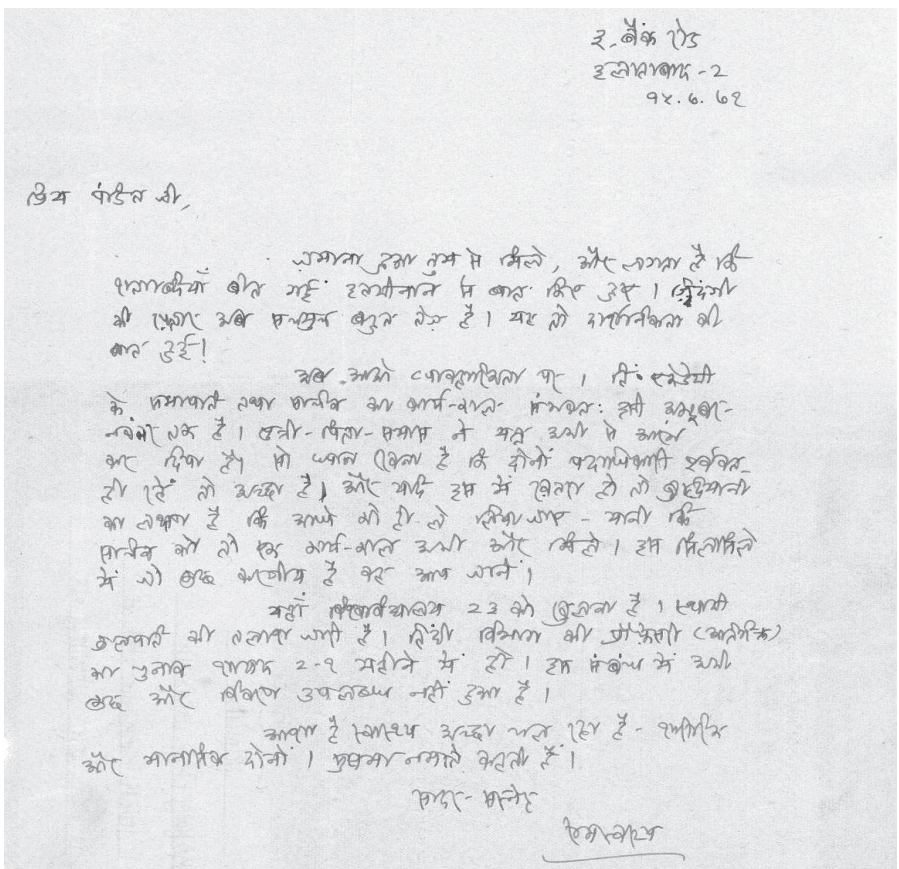

पं. विद्यानिवास मिश्र को लिखा गया पत्र महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय में संरक्षित है।

उपन्यास

आदिवासी जीवन के संघर्षों का महाआख्यान

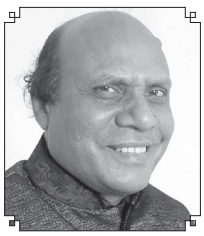

कैलाश मंडलेकर

आलोचक-व्यंग्यकार

संपर्क :
38 नाका जसवाड़ी रोड़,
करोड़ी चक्की के पास,
खंडवा -450 001
(म.प्र.)
मो.: 9424086855,
9425085085

पुस्तक : प्रार्थना में पहाड़
लेखक : भालचंद्र जोशी
प्रकाशक :
आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ : 224
मूल्य : ₹ 200

भालचंद्र जोशी का उपन्यास 'प्रार्थना में पहाड़' से कुछ ज्यादा ही अपेक्षाएं रखना इसलिए भी उचित है कि उन्होंने आदिवासी जीवन लगभग आदिवासी बनकर ही लंबी अवधि तक जिया है और आज भी आदिवासी अंचल में रहते हैं। इस उपन्यास को पढ़कर लगता है कि उन्होंने आदिवासी जीवन की निकटता बहुत आत्मीयता से बनाए रखी थी और कितना टूटकर, कितनी गहरी संलग्नता से उनके बीच जीवन जिया है।

आज के समय में ग्रामीण परिवेश पर विशेषकर आंचलिक उपन्यास जो आदिवासियों की जीवन-गाथा कहता हो, लिखना मुश्किल है। आदिवासियों पर लिखने के लिए कभी-कभार आदिवासी अंचल में घूम-फिर आने या किसी से उस अंचल के किस्से सुनकर उपन्यास लिखना संभव नहीं है। ऐसे गढ़े हुए, उपन्यास का बनावटीपन साफ नजर आ जाता है। ऐसे समय में भालचंद्र जोशी का उपन्यास 'प्रार्थना में पहाड़' से कुछ ज्यादा ही अपेक्षाएं रखना इसलिए भी उचित है कि उन्होंने आदिवासी जीवन लगभग आदिवासी बनकर ही लंबी अवधि तक जिया है और आज भी आदिवासी अंचल में रहते हैं।

इस उपन्यास को पढ़कर लगता है कि उन्होंने आदिवासी जीवन की निकटता बहुत आत्मीयता से बनाए रखी थी और कितना टूटकर, कितनी गहरी संलग्नता से उनके बीच जीवन जिया है।

उपन्यास में एक आदिवासी गांव सरकारी दस्तावेजों और शहरी लोगों की जानकारी और राजनीतिक जरूरतों से लगभग नदारद हैं, अदृश्य हैं। अत्यंत छोटा-सा गांव उस समय संकट में आ जाता है जब गांव के निकट बहती नदी में पास की बनी शराब की फैक्ट्री का वेस्ट लिक्विड डाल दिया जाता है। लोग और जानवर उस विषैले पानी के उपयोग से मरने लगते हैं। फैक्ट्री मालिक मिस्टर बजाज इस घटना को दबाना चाहता है। बदले में कलेक्टर, विधायक से लेकर मंत्री तक को रिश्वत देकर साध लेता है लेकिन फिर वास्तविकता पता लगाने राजधानी से एक पत्रकार समीर चंद्रा वहां आ जाता है। उद्योगपति मिस्टर बजाज उसे भी साध लेना चाहता है। यहीं से शुरू होते हैं, आदिवासियों के जीवन-संघर्ष। अंग्रेजी के बड़े अखबार के पत्रकार समीर चंद्रा की कमजोरी स्त्री है पैसा नहीं, यानी इस जगह वह अपनी नैतिकता को लेकर दृढ़ है। इस अजीब-सी ईमानदारी के साथ वह चीजों और स्थितियों को देखता है।

इस उपन्यास में समाजवादी सोच, क्रांति की अवधारणा, और सामाजिक अंतर्विरोधों के बीच आदिवासियों की संकटग्रस्त स्थिति को प्रचलित भाषणों, निबंधों या विमर्श के हल्ले से बाहर लाकर एक बड़े और जरूरी संघर्ष की भूमिका से जोड़ा है। व्यवस्था के उजाड़ में अकेले पड़े, तिल-तिल मरते आदिवासी की पीड़ा और दुःख का एक ऐसा विशाल और मार्मिक भूगोल खड़ा किया है जहां प्रतिबद्धता के सारे प्रश्न और निराकरण के दावे स्तब्ध रह जाते हैं। यह जुड़ाव उपन्यास की संरचना के साथ ही रचाव-धर्म के लिए भी एक अनिवार्यता में आगे आता है। शहरी जीवन और व्यवस्था से किसी भी प्रकार की अपेक्षाएं न रखने वाले आदिवासी व्यवस्था के स्वार्थी षड्यंत्र और लोभ के कारण नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हो जाते हैं। उससे बड़ी लाचारी यह है कि वे नहीं जानते कि उनकी लड़ाई किससे है? उनकी दारुण स्थिति के लिए जिम्मेदार शक्तियां कौन हैं? उपन्यास का महत्वपूर्ण हिस्सा यही है कि इस अबोध स्थिति के बीच वे अपनी जीवन संघर्ष शुरू करते हैं। लड़ाई इसलिए कठिन और लंबी होती है कि वे नारकीय जीवन की जिम्मेदार ताकतों से अपरिचित हैं। वे तो परंपरा में मिले संस्कारों की करुणा में देवताओं के आगे नतमस्तक होते हैं। आदिवासी अपने देवता पेड़ के नीचे अनगढ़ मूर्तियों या अन्य प्रतीक में रखकर पूजते हैं। वहीं जाकर प्रार्थनाएं करते हैं। ''गांव के प्रति अपने किसी क्रोध के कारण या भूलवश दिए गए किसी शाप की लज्जा में देवता बिलकुल खामोश थे। रतन ने आगे बढ़कर ओटले पर से और देवताओं के ऊपर गिरे पत्तों को धीरे से साफ किया और देवताओं के पास चुपचाप बैठ गया। उसके पास कहने के लिए बहुत कुछ था। गांव का दुख, गांव की लाचारी का गुस्सा, आपदा में मरते आदमी और जानवर, सब कुछ कहना चाहता था लेकिन देवताओं की सुनसान चुप्पी में ही देवताओं को अपने गांव के दुख सुनाता रहा'' (पृ. 12)

यह आदिवासी विनम्रता है जो आपदा में भी देवताओं के प्रति गुस्सा जाहिर नहीं करते जैसे आम शहरी आपदा में ईश्वर के आगे रोते-गाते उन्हें उलाहने देता है, आदिवासी ऐसा नहीं करते, सिर्फ प्रार्थना करते हैं। मामूली-सी जिज्ञासाओं से भरी अबोध शिकायत जरूर इस प्रार्थना में संभव है लेकिन रोष नहीं।

इस उपन्यास की बड़ी विशेषता यही है कि यह किसी एक गांव की त्रासदी को कहते-कहते अपने आशयों के विस्तार के केंद्र में भारतीय ग्रामीण जीवन की दुःख-पीड़ा और संघर्ष को

ले आता है। इसलिए यह उपन्यास आदिवासियों के एक गांव की कहानी की परिधि से बाहर और बहुत बाहर जाकर अर्थ-विस्तार देता है। यह कृति इस बात का सुंदर उदाहरण है कि कैसे पात्रों और परिवेश की पहचान एक बड़े भू-भाग के परिचय से नाता जोड़ लेती है। भालचंद्र जोशी की शक्ति उपन्यास के सुगठित शिल्प में एक प्रभावी भाषा और गहरे जीवनानुभवों के साथ उभरकर सामने आती है। ग्रामीण जीवन और आदिवासी जीवन से लगाव और गहरी आत्मीयता का रिश्ता ही उनकी इस रचना की शक्ति का आधार है। जैसा कि उल्लेख किया है कि उपन्यास एक राजनीतिक संस्पर्श भी लेकर चलता है। भालचंद्र जोशी की राजनीतिक संलग्नता और चेतना इसी में स्पष्ट है कि वे प्रतिबद्धता को लेकर इसी तरह के अनेक संगठनों में सक्रिय भूमिका में रहे हैं। लेकिन उनकी यह राजनीतिक चेतना रूढ़ होते आग्रहों से नितांत पृथक होकर ग्रामीणजन के दुख-अभाव और अनुभवों की तप्त जमीन पर पकी है। बल्कि उनकी यह आग्रह युक्त राजनीतिक चेतना इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से उभर कर आई है और पात्रों की जो सांगठनिक उहापोह है दरअसल वे संगठन के भीतर विचार और सक्रियता को लेकर पैदा हुए अंतर्द्वंद्व और गहरे आत्म संघर्ष की यथार्थ पहचान के स्पष्ट संकेत हैं।'' दोपहर को रैली शुरू हुई तब तक सिर्फ पीने का पानी नसीब हुआ। उन तीनों ने भूख की परवाह नहीं की और पूरे जोश के साथ नारे लगाते हुए रैली में चलते रहे। मजदूर साथियों को पूरी सब्जी के पैकेट दिए गए... दोपहर को बनकर पॉलीथिन में पैक करके दी थी इसलिए आलू की सब्जी खराब हो गई। बताने पर परितोष चक्रवर्ती ने थोड़े गुस्से से कहा, 'हमारा संघर्ष, हमारा मिशन उद्देश्य महत्वपूर्ण है या ये सब्जी-पूरी?... लक्ष्य के बारे में सोचो!' बहुत डरते-डरते रतन ने कहा, 'पर इतना सब करने के लिए पेट में अन्न का दाना नहीं होगा तो खाली पेट तो पहले भूख से लड़ना होगा।' (पृ. 124)

'वो कह रहे थे एक दिन ऐसा आ जाएगा जब अमीर-गरीब बराबर हो जाएंगे। इसका मतलब सेठजी और मैं और मेरे साथी एक बराबर हो जाएंगे? फिर उसने सोचा, चलो इतने अमीर न भी बने, लेकिन इतना पैसा जरूर आ जाए कि रोटी दोनों समय खाने को मिले।' (पृ. 126) ये सारे प्रसंग संगठन के नवीन और उस अबोध आदिवासियों की नई भर्ती की विचार और संगठन को लेकर जिज्ञासा, प्रश्न और गहरी द्वंद्वात्मकता के हैं जो संगठनों की बदलती कार्यशैली पर उठते प्रश्नों पर ठहरते हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि इन सबमें लेखक अपनी ओर से कोई विचार, निर्णय या निराकरण नहीं प्रस्तुत करता है यह पात्रों की मासूम जिज्ञासा और वैचारिक द्वंद्व में असंगतियां सामने आती हैं। साथ ही लाचारी में भी ये पात्रों की जीवन के प्रति अगाध आस्था और जिजीविषा है। चूंकि यह कोई आसान

भालचंद्र जोशी जैसे भाषा के सजग और सिद्धहस्त कथाकार हैं उसी तरह वे पात्रों के रचाव और उपन्यास के गठन के प्रति भी सचेत हैं। यह उपन्यास उस आम धारणा को निरस्त करता है जहां आंचलिक उपन्यास का अर्थ अंचल विशेष के जीवन व्यापार पर रोमंटिज्म का ऐसा प्रभाव जो भावुकता की ओर ले जाए। इसके उलट वे एक विशेष भू-भाग की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के बीच आदिवासी जाति को एक किस्म की क्रांति-चेतना से संबद्ध करते हैं।

काम नहीं है लेकिन इस कठिनाई को भी लेखक ने बहुत सहजता से रचना का हिस्सा बनाया है। श्रम, मूल्यों के प्रति निष्ठा और जीवन के प्रति गहरी आस्था उनके संघर्ष की गति को टूटने नहीं देती है और यही गति उपन्यास की निरंतरता में उसकी गति का संतुलन भी साध कर चलती है क्योंकि मूल्यों को लेकर किसी तरह की बाहरी बनावटी प्रसंगों का सहारा नहीं लिया है। प्रमुख बात तो उपन्यास की यही है कि लेखक आदिवासी जन के बहुत सामान्य से जीवन-व्यापार में सही संघर्ष की राह और कारण की पहचान करते हैं और उसी को आधार बनाकर सामाजिक सक्रियता या सघन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के विकास का प्रारूप तैयार करते हैं। आदिवासी गांव से आए रतन और उसके साथियों की राजनीतिक सक्रियता और राजनीतिक चेतना के स्तर का फर्क बहुत सावधानी से बुना गया है इसलिए यह लेखन नासमझ उत्साह के राजनीतिक लेखन की संभावना को पूरी तरह रद्द करता है। इन आदिवासी युवकों के लिए पार्टी, मजदूरी, खेत-खलिहान, भूख, अभाव, पीड़ा और राजनीतिक सक्रियता आपस में गड्ड-मड्ड है। इनकी पृथकता की समझ यदि लेखक इनके शहर आते ही बता देता तो यह एक नकली और बनावटी लेखन लगता क्योंकि चीजें और स्थितियां खासकर सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में इतनी तेजी से नहीं बदलती हैं। यह लेखकीय सजगता पूरे उपन्यास में नजर आती है। ऐसे में मामूली-सी असावधानी से अनावश्यक सांगठनिक उत्साह पात्रों की विश्वसनीयता को क्षति पहुंचाता और पात्रों के स्वाभाविक मानसिक विकास की क्रमबद्धता को लेखकीय उतावली चरित्रों पर अनावश्यक दबाव बनाती।

उपन्यास में पात्र लेखकीय आग्रह के दबाव से मुक्त है। स्त्री पात्र में रूपा और नीना के पात्र बहुत सावधानी से रचे गए हैं। रूपा प्रेम और गांव के हित और सुरक्षा के द्वंद्व में नहीं फंसती है। गांव को बचाना उसकी भी प्राथमिकता है लेकिन प्रेम की चिंता करना, रतन के लिए बेचैनी उसके अंतर्मन का दबाव है। वह प्रेम की पवित्रता में जीवन की सार्थकता तलाशती है तो नीना मुंबई के फिल्मी माहौल के कुचक्र को जल्दी ही समझ जाती है और मिस्टर बजाज के यहां नौकरी कर लेती है। देह का समर्पण और नौकरी की अनिवार्यता का द्वंद्व उसके पास भी नहीं है क्योंकि वह जानती है कि आर्थिक आत्मनिर्भता किसी भी प्रकार के कुचक्र या अमानवीयता से सुरक्षा में कारगर है। 'जीवन ने उसे इतना व्यावहारिक बना दिया था कि यहां कोई किसी के लिए कुछ नहीं करता है। मिस्टर बजाज जो उसे हर काम में प्राथमिकता देते है। अच्छी सैलरी। अच्छा फर्निश्ड फ्लैट। अच्छी कार। जगुआर एक्स-जे।... यह सारा कुछ उसका अतिरिक्त पारिश्रमिक है जो वह उनके इस तरह के कठिन काम को सफल बनाती है। यह बिजनेस है। उसके लिए यह समझना अब कठिन नहीं रह गया है।' (पृ. 107) लेकिन नीना की विवशता एक अदृश्य अपील में प्रकट जरूर होती है। सामाजिक दृष्टि से कोई उसे कम नहीं मानता उसकी अपनी एक प्रतिष्ठा भी है लेकिन अंतर्मन कचोटता है। वह सामाजिक व्यवस्था की शिकार स्त्री है। वह ऐसी उन तमाम स्त्रियों का प्रतिनिधि चरित्र है जो फिल्म उद्योग से कास्टिंग काउच का शिकार है तो उच्च वर्ग सोसायटी में भारी सैलरी के आकर्षण में फंसी विवश पी.ए. है। ऐसे उद्योगपति जो वर्तमान व्यवस्था में निर्णायक भूमिका रखते हैं और यह स्वतः मानते हैं कि धन-कुबेर हो जाने मात्र से वे हर स्त्री को हासिल करने के सहज

अधिकारी हैं, आखिरकार इन सबके साथ वे पुरुष भी तो हैं।

इन तमाम स्थितियों के बावजूद लेखक ने इसे महज स्त्री-पुरुष में संबंधों की समस्या पर कमतर नहीं किया है। उपन्यास की प्रत्येक स्त्री अपने प्रेम-पुलक में या फिर जीवन-संघर्ष के कष्टों में अपनी वेदना के कारणों को जान-समझ रही है और उसके निराकरण के तरीके अपनी समझ और सुविधा के आधार पर खोज रही है। यह खोज और पहचान की गरिमा दुख और संघर्ष के माध्यम से आई है इसी से उनके व्यक्तित्व या परिवेश की भी एक पृथक पहचान बनती है। दुखों ने उनको आहत किया, यातनाएं दीं लेकिन संघर्ष की असीम इच्छाशक्ति अंत तक बनी रही इसलिए वे इस उपन्यास में पुरुष पात्र के संघर्ष के समांतर अपना पृथक और प्रभावी अस्तित्व रखती हैं। जिनका इस संघर्ष यात्रा में पूरा-पूरा योगदान है। तमाम आपदाओं और क्रूर अंत के बावजूद रूपा इतने संघर्ष के बाद नए जीवन में प्रेम को प्राथमिकता में रखती है क्योंकि आपदाओं के अंत का सुखद अहसास आखिरकार प्रेम में ही छुपा होता है। प्रेम ही वह शक्ति है जो अतीत की यातनाओं से मुक्ति का मार्ग शीघ्र बना देती है। प्रेम में डूबा आदमी यातना से बाहर जल्दी आता है। वह दुखद अतीत को मृत बंदरिया के बच्चे की भांति चिपकाए नहीं रखता बल्कि स्मृतियों के कोश में आदर की जगह देता है।

भालचंद्र जोशी जैसे भाषा के सजग और सिद्धहस्त कथाकार हैं उसी तरह वे पात्रों के रचाव और उपन्यास के गठन के प्रति भी सचेत हैं। यह उपन्यास उस आम धारणा को निरस्त करता है जहां आंचलिक उपन्यास का अर्थ अंचल विशेष के जीवन व्यापार पर रोमांटिज्म का ऐसा प्रभाव जो भावुकता की ओर ले जाए। इसके उलट वे एक विशेष भू-भाग की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के बीच आदिवासी जाति को एक किस्म की क्रांति-चेतना से संबद्ध करते हैं। उसमें उस यथार्थ को शामिल करते हैं जो रूमानियत की जमीन पर विकसित नहीं होता बल्कि एक वैज्ञानिक सोच के भीतर चीजों और स्थितियों को गहरी सूक्ष्मता में पकड़ता है।

यह उपन्यास आदिवासी जीवन के कठोर-कड़वे यथार्थ की अभिव्यक्ति के ठसके के चलते किसी मोह में नहीं उलझता है। आंचलिकता के लिए लेखकीय आकर्षण उस तरह नहीं है जो कोई अद्भुत या विलक्षण प्रकट करके खासकर बोलियां या लोकगीतों या कथाओं में उपन्यास की गति को संभव करते हैं। वे आदिवासी जीवन की प्रदर्शनी नहीं लगाते हैं बल्कि प्रदर्शनियों में प्रदर्शित आदिवासी जीवन की रंगीनियत से बाहर उनकी उस यातना, पीड़ा और संघर्ष से साक्षात कराते हैं जो एक सार्थक लेखन का अभीष्ट है। इतनी सहजता से यह

भालचंद्र जोशी के इस उपन्यास में ध्वंस के बाद एक नए संसार के निर्माण की इच्छा और जरूरत को एक बड़े मिथ के सहज उपयोग में सफलता से संभव किया है। सृष्टि की अनवरता और जिजीविषा को एक बड़े मिथ में उजागर किया है। इस मिथ के बड़े आशयों में उद्घाटित करके आदिवासी जनजीवन के संघर्ष की सफलता के साथ उम्मीदों को बनाए रखने वाली शक्ति के प्रति आदर भी अभिव्यक्त हुआ है।

संभव इसलिए भी हुआ कि लेखक अनेक बरसों तक या कहें जीवन का बड़ा भाग आदिवासियों के बीच गुजारा है इसलिए उनसे गहरी आत्मीयता और परिवेश की निकट और वास्तविक पहचान स्पष्ट है। वे किसी शहरी पर्यटक की भांति जो आदिवासी जीवन के मेले-तमाशे या तीज-त्यौहारों की खुशियों को ही आदिवासी जीवन की संपूर्णता मानते हैं, इस तरह आदिवासी जीवन को उपन्यास में दाखिल नहीं होने देते हैं।

प्रकृति, पेड़, पौधे और खासकर सघन जंगल भालचंद्र जोशी की अधिकांश रचनाओं में पात्रों की भांति मौजूद है। प्रकृति से उनका गहरा और आत्मीय रिश्ता अब अपरिचित नहीं रह गया है। प्रकृति और लोक के प्रति ऐसी गहरी आसक्ति कम ही लेखकों के पास है। यही कारण रहा है कि प्रकृति के साथ-साथ प्रमुख पात्रों के साथ अन्य पात्रों के रचाव में भी उनकी गहरी आत्मीयता लोक से और उस चरित्र के साथ बनी रहती है। इसी सघन और मोहक अभिव्यक्ति ने एक अंतरंग और विश्वसनीय परिवेश में कथा की बनावट को संभव किया। जो लोक चेतना भालचंद्र जोशी के लेखन में दृष्टिगत होती है वह यथार्थ से नाता तोड़कर किसी बनावटी रूमानी लोक की रचना के उत्साह में विकसित नहीं होती है। यह लोक चेतना लेखक के भीतर उस जनजीवन से गहरी और आत्मीय संलग्नता से उपजी है इसमें किसी कृत्रिम, बनावटी की संभावना से मुक्ति की स्पष्ट पहचान उभरती है। यह लोक चेतना लेखकीय दृष्टि को कुछ इस तरह से संपन्न करती है कि आदिवासी जनजीवन की तकलीफों, संघर्षों और पूरे परिवेश की रचना में वह एक कला-दृष्टि में या कहें कला-संपन्न दृष्टि में तब्दील और विस्तारित हो जाती है। आदिवासी जीवन के दुख, पीड़ा और उनके अबोध जीवन तथा संघर्षों को एक बड़े और विस्तारित फलक पर प्रकट करता यह उपन्यास उस जनजीवन का एक महा आख्यान है।

भालचंद्र जोशी उपन्यास के रचाव के विस्तार में आदिवासी जीवन को केंद्र में रखकर समूची मनुष्यता के संदर्भ में चरित्रों का विकास करते हैं। उनके यहां चरित्रों का निर्माण इकहरा नहीं है। इन सबके पीछे एक सुचिंतित ठहरी हुई संयमित दृष्टि है जो संघर्ष के निरर्थक आवेश में ऋणात्मक नहीं होती। व्यवस्था के प्रति तिरस्कार पात्रों में एकाएक नहीं पैदा होता बल्कि वह एक दृष्टि विकास के साथ आकार लेता जाता है। मूल्यों को लेकर जो सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना है वह आपदा के प्रतिकार में लक्ष्यविहीन ध्येय की ओर नहीं बल्कि उस चेतना से वे उस शक्ति का भी विस्तार करते हैं जो एक लक्ष्य को लेकर संयमित लेकिन प्रतिकार में तत्काल प्रस्तुत हो।

इस उपन्यास में ध्वंस के बाद एक नए संसार के निर्माण की इच्छा और जरूरत को एक बड़े मिथ के सहज उपयोग में सफलता से संभव किया है। सृष्टि की अनवरता और जिजीविषा को एक बड़े मिथ में उजागर किया है। इस मिथ के बड़े आशयों में उद्घाटित करके आदिवासी जनजीवन के संघर्ष की सफलता के साथ उम्मीदों को बनाए रखने वाली शक्ति के प्रति आदर भी अभिव्यक्त हुआ है। सब कुछ नष्ट हो जाता है तभी नवीन सृष्टि की शुरूआत होती है। ध्वंस में ही नवनिर्माण के तत्व छिपे होते हैं। अंत की हताशा से ठीक क्षण भर पहले उम्मीद अपने आपको बचाने में सफल हो जाती है। दुनिया को नष्ट होने का डर नहीं, बल्कि उम्मीद टूटने का डर ज्यादा होता है। व्यक्ति या समाज को उसका साहस और संघर्ष क्षमता उम्मीद के बगैर न तो टूटने से बचा सकती है और नवनिर्माण की आधार भूमि को उस ध्वंस में तलाश सकती है। इस अर्थ में यह उपन्यास एक बड़ी महत्वाकांक्षा को सामने रखता है। लेखक की इच्छा उपन्यास में साफ सुरक्षित नजर आती है कि वह महज एक अंचल विशेष की कथा नहीं कह रहा है बल्कि इसे व्यापक भारतीय बल्कि समूचे विश्व जनजीवन के सामयिक संदर्भों के साथ एक बड़ी यथार्थ-दृष्टि के साथ प्रस्तुत कर रहा है। 'रात को काफी देर तक तीनों सोचते रहे कि दुनिया में और भी लोगों को कितने कष्ट हैं। दुनिया के ढेर सारे लोग, ढेर सारे दुःखों के बोझ से दबे हैं। दुख जल्दी-जल्दी घर बदलता है, गांव बदलता है।' (पृ. 179) यह बदलते घर या गांव का संदर्भ उस ग्लोबल विलेज से जुड़ता है जहां दुनिया के सारे दुखी और शोषित लोग, कारण चाहे भिन्न हो लेकिन दमन की एक ही विचार शैली के दबाव की नीचे हैं। घर बदलना, गांव बदलना समूचे देश-दुनिया के संदर्भ में बदलाव के आशय प्रकट करता है कि इस शोषण के संदर्भ में समूची दुनिया के सर्वहारा के दुःख एक से हैं। यह उपन्यास का बड़ा हासिल है जो चीजों और स्थितियों केा इतने वृहत्तर संदर्भों में जाकर पकड़ता है और उद्घाटित करता है।

कविता

भाषा, शिक्षा और समाज के बहाने

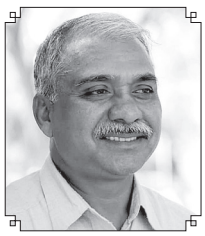

कालू राम शर्मा

साहित्यकार

संपर्क :
38, तृप्ति परिसर, नानाखेड़ा,
हरि फाटक, क्लिंक रोड,
उज्जैन-456010 (म.प्र.)
मो. 8226000428

पुस्तक :
भाषा, शिक्षा और समाज
लेखक :
प्रेमपाल शर्मा
प्रकाशक :
संभव प्रकाशन, कैथल
(हरियाणा)
पृष्ठ : 127
मूल्य : ₹ 80

रेलवे विभाग में कार्यरत रहते हुए प्रेमपाल शर्मा की सोच शिक्षा और समाज को लेकर क्या है यह 'भाषा, शिक्षा और समाज' में तल्खी से पढ़ी जा सकती है। कोई 31 लेखों का संकलन है यह पुस्तक जो शिक्षा और सामाजिक हालातों पर सवाल खड़े करती है। प्रेमपाल शर्मा गांधी की नई तालीम और उनके देश व समाज को लेकर मूल्यों से प्रभावित लगते हैं।

आखिर हमारे लिए शिक्षा क्या करती है? क्या यह महज एक डिग्री है जो नौकरी भर पाने के लिए है? या कुछ और? वाकई में लगता ऐसा ही कुछ है कि सर्वसाधारण की शिक्षा जिन मकसदों के लिए तय की गई वे कहीं पीछे छूट गए लगते हैं। बहुत दूर की बात न की जाए तो जो शिक्षा पाई जा रही है वह क्या कुछ अर्थपूर्ण और हुनर सीखने का वाहन बन पाती है? एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर डिग्री तो पा लेता है मगर वह वाशिंग मशीन जैसे उपकरण की मरम्मत करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। इतना ही नहीं समस्या की जड़ें और भी गहरी हैं। हाईस्कूल पढ़ने के बाद छात्र ढंग का लिख नहीं पाते हैं। उनमें इतना आत्मविश्वास शिक्षा पैदा नहीं कर पाती कि वे अपने विचारों को ठीक से व्यक्त कर सके।

लिहाजा, हाल ही में एक पुस्तक इन्हीं तरह के सवालों और मसलों को लेकर आई है 'भाषा, शिक्षा और समाज' शीर्षक से। रेलवे विभाग में कार्यरत रहते हुए प्रेमपाल शर्मा की सोच शिक्षा और समाज को लेकर क्या है यह इस दस्तावेज में तल्खी से देखी-पढ़ी जा सकती है। 31 लेखों का संकलन है यह पुस्तक जो शिक्षा और सामाजिक हालातों पर सवाल खड़े करती है। प्रेमपाल शर्मा गांधी की नई तालीम और उनके देश व समाज को लेकर मूल्यों से प्रभावित लगते हैं। पुस्तक का पहला लेख वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को धत्ता बताता है। हमारे देश में छात्र तरह-तरह की डिग्री लिए घूमते हैं, उन्हें नौकरी भी मिल जाती है मगर जो उन्होंने पढ़ा उसका एप्लीकेशन वाला भाग कमजोर ही रह जाता है। वैसे प्रेमपाल शर्मा के लेख संवैधानिक मूल्यों से प्रेरित लगते हैं। शिक्षा का असल मकसद ऐसे नागरिक तैयार करना है जो लोकतंत्र को पोषित करने में अपनी भूमिका अदा करे। संविधान समानता और एक दूसरे की परवाह की वकालत करता है। मगर देखने में आता है कि हमारी शिक्षा मात्र डिग्री देकर मुक्त हो जाती है। मामला यह है कि हमने शिक्षा का ढांचा कुछ इस तरह से गढ़ा कि लोकतांत्रिक मूल्यों को पोषित करने की दिशा में पिछड़ चुकी है।

प्रेमपाल अपने इन लेखों के जरिए बारीकियों की ओर ध्यान दिलाने की भरपूर कोशिश करते हैं जहां आधुनिक मगर कर्मकांडी होते जा रहे समाज पर सवाल उठाते हैं। शादी-विवाह जैसे मामले को ही देख लें तो हमें देश के समाज की तस्वीर समझ में आ जाती है। जिस तरह से विवाह के निमंत्रण पत्र आजकल छापे जाते हैं, जिस प्रकार के वैवाहिक आयोजन किए जाते हैं वे गांधी के दर्शन से मेल नहीं खाते।

हम अपने आसपास ही रोजाना असमानता के उदाहरण घटते हुए देखते हैं। प्रेमपाल अपने ही घर का एक उदाहरण देने का साहस करने से नहीं चूकते। वे बताते हैं कि उनके घर में अगर कोई मजदूर आता है तो उनकी पत्नी ही शक करती है कि कहीं उनका टॉयलेट गंदा न कर दे। यह उन लोगों की बात हो रही है जो पढ़े-लिखे हैं। वे अपने एक लेख में सटीक सा सवाल उठाते हैं कि क्या मजदूरों का मूत्र इतना अपवित्र, असहनीय है? वे गांधी के एक कथन को रखते हैं: ''असमानता हिंसा को जन्म देती है, समानता अहिंसा को।''

समाज का ढांचा आजादी के बाद जातिविहीन होना चाहिए था जहां हर कोई एक जैसा हो, समता और अहिंसा की बुनियाद पर देश की नींव बननी चाहिए था। मगर ऐसा नहीं दिखता। शिक्षा हमें एक दूसरों से दूर करती है। ''काम करने वालों का जितना अपमान इस देश में हुआ है उतना कहीं नहीं''। अच्छा स्कूल शीर्षक से पहला ही पाठ शिक्षा पर भारी चोट करता है। शिक्षा में काम को हमने पूरी तरह भूला ही दिया। ये दीगर बात है कि हाल ही का एनसीएफ-2005 काम और शिक्षा की जुगलबंदी की कवायद करता दिखता है मगर वही 'ढाक के तीन पात'।

प्रेमपाल अपने लेखन में ढोंगी बाबाओं व जातिगत व्यवस्था पर प्रहार करते हैं। आजकल ढोंगियों की बाढ़ सी आ रही है और इन्हें मानने वाले वे लोग बड़ी तादाद में हैं जो विज्ञान की डिग्री लिए हुए हैं। ये वे लोग हैं जो वैज्ञानिक मानसिकता और तर्क की दुहाई देते नहीं थकते मगर बाबाओं की शरण में दिखाई देते हैं। 'पढ़े-लिखे बैल' नामक शीर्षक से लिखा लेख बताता है कि पढ़े-लिखे लोग विवेक खो चुके हैं। इसके कारण क्या हैं? एक बड़ा कारण तो यही दिखता है कि शिक्षा इस मामले में नाकामयाब रही है। खासकर विज्ञान शिक्षा को लेकर वे अपने लेखों में चिंतित होते दिखाई देते हैं। वे मीडिया को भी इस मामले में लपेटने की कोशिश करते हैं कि

किस तरह मीडिया दकियानुसी विचारों की आग में घी का काम करता है।

लगता है ये लेख प्रेमपाल ने पिछले लगभग पंद्रह सालों में विभिन्न समाचार पत्रों में लिखे हैं। इन लेखों में लेखक की सामाजिक व शैक्षिक मसलों पर बेचैनी स्पष्ट तौर पर झलकती है। हालांकि कुछ लेखों में वे अपने सामाजिक जीवन के अनुभवों को भी शामिल करते हैं। यह कैसे हालात हैं कि हम संवेदनाओं के स्तर पर इतने जर्जर हो चुके हैं कि विवाह कार्यक्रमों में या कोई और, वक्त की पाबंदी का ख्याल ही नहीं रखते। विवाह जैसे कार्यक्रम आजकल फैशन और प्रतिस्पर्धा में बदल चुके हैं। विवाह के निमंत्रण पत्रों से अनुमान लगाया जा सकता है कि विवाह कितना महंगा और पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाला होगा। प्रेमपाल इस प्रकार के छोटे-छोटे मसलों पर समाज का विश्लेषण करने से नहीं चूकते।

असमानता की हिंसा हमारे दिलो-दिमाग में कितनी कूट-कूट कर भरी हुई है। हर स्तर पर असमानता! गरीबी-अमीरी, जाति की -ऊंची जाति - ब्राह्मणों में भी तमाम जातियां...। 'असामनता में हिंसा' नामक लेख में वे अपने ही घर में असमानता को लेकर खुलासा करने का साहस दिखाते हैं। हम मध्यमवर्गीय लोग हर मामले में परावलंबी बने हुए हैं। घर में हम मिक्सर से लेकर कोई भी मामूली सा मरम्मत के काम के लिए मैकेनिकों पर निर्भर रहते हैं। जब ये अपने घरों में आते हैं तो हम काम तो करवाना चाहते हैं मगर उनके प्रति हमारा नजरिया हिकारत भरा ही होता है।

किसी व्यक्ति के जीवन में पुस्तकालय कैसे रोशनी भर सकता है, इसका नमूना इस पुस्तक के एक अध्याय में देखा जा सकता है। ग्रामीण परिवेश का हम बखान करना नहीं चूकते। मगर सही में गांवों में पुस्तकालयों का टोटा पसरा पड़ा है। प्रेमपाल जब दिल्ली आए तो यहां वे पुस्तकालयों के संपर्क में आए। 70-80 के दशक में दिल्ली के पुस्तकालय बढ़िया थे। वे रेलवे की नौकरी करने लगे तभी पुस्तकालयों से उनका गहरा नाता रहा जो अब तक बरकरार है। यहीं से यह विचार एक आम व्यक्ति के दिमाग में उपजता है और अपने पैतृक जिला बुलदंशहर में एक छोटे से पुस्तकालय की शुरुआत इस उम्मीद से करते हैं कि सैकड़ों बच्चों को किताबें नसीब हो सकें। यह सही है कि आज जहां हम इंटरनेट, टीवी और मॉल के जंगल में जी रहे हैं वहां बच्चों के हाथों में पुस्तकें हो, यह सपना धूमिल होता दिखता है।

पढ़ने-पढ़ाने का माध्यम क्या हो? एनसीएफ-2005 के बाद ही एनसीईआरटी ने एक बढ़िया काम जो किया वह यह कि 'समझ का माध्यम' पर राष्ट्रीय बहस पैदा हुई। वास्तव में

प्रेमपाल शर्मा के लेख संवैधानिक मूल्यों से प्रेरित लगते हैं। प्रेमपाल अपने इन लेखों के जरिए बारीकियों की ओर ध्यान दिलाने की भरपूर कोशिश करते हैं जहां आधुनिक मगर कर्मकांडी होते जा रहे समाज पर सवाल उठाते हैं।

सही शिक्षा तो यही है कि रटने को तिलांजली दे और बच्चों में समझ का विकास करें। जब समझ की बात की जाती है तो उसमें भाषा की भूमिका अहम हो जाती है। समझ तभी विकसित होती है जब सवाल उठे। समझ तब विकसित होती है जब पढ़ने की सामग्री अपनी भाषा में हो। इतना नहीं लिखना भी तो अपनी ही भाषा में ही होना चाहिए। प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को अपनी भाषा में विमर्श करने के मौके बेहद कम हैं। इस मामले में एनसीईआरटी द्वारा समझ के माध्यम पर राष्ट्रव्यापी बहस का जिक्र लेखक अपने एक लेख में करते हैं। वे इस लेख के जरिए अनेक मसलों को उठाते हैं। हमारे यहां के कथित संस्कार सिखाते हैं कि बड़ों का सम्मान करो। सम्मान का अर्थ यह कि बड़ों के सामने न तो सवाल करो न ही कुछ कहो। इसके मायने ये हैं कि बच्चे शिक्षक के सामने आज्ञाकारी बने रहे। 'यस सर' जैसी मानसिकता को बनाने में वे शिक्षा को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। और दरअसल, ये सही भी है। स्कूल, बच्चों की परवाह करते हुए भी नहीं दिखते। जो पिछड़ते हैं वो पिछड़ते ही जाते हैं। इनकी ओर न तो स्कूल के शिक्षकों का और न ही पालकों का ध्यान होता है और ये हालात निजी स्कूलों में कहीं अधिक पसरे हुए हैं। एक ऐसे ही बच्चे की कहानी इसी लेख में लेख बयां करते हैं। अपने एक पड़ोसी के बच्चे की दयनीय स्थिति को देखकर उसे सरकारी स्कूल में भर्ती करवाने की पैरवी करते हैं। जिस बच्चे को निजी स्कूल में अंग्रेजी भाषा के चक्कर में भर्ती करवा दिया जाता है और आत्मविश्वास जिसका चकनाचूर हो जाता है, उसी बच्चे के चेहरे पर सरकारी स्कूल में भर्ती होने के बाद आत्मविश्वास लौट आता है। यह सही है कि हर बच्चे में प्रतिभाएं जन्मजात रूप से होती है जिन्हें फलने-फूलने के अवसर स्कूलों को देना चाहिए। बावजूद इसके बच्चों को भारी-भरकम अंकों को प्राप्त करने की दौड़ में धकेलना कहां की शिक्षा है।

लेखक, जॉन हॉल्ट, गांधी, टैगोर, जे.पी. नायक, गिजु भाई इत्यादि और वर्तमान के कृष्ण कुमार जैसे शिक्षा शास्त्रियों का सीधा-सीधा बहुत अधिक जिक्र तो नहीं करते मगर उनके विचार इन लेखों में प्रतिबिंबित होते हैं। दीवार का इस्तेमाल और अन्य लेख, कृष्ण कुमार की पिछले दसेक बरस पहले आई एक एक किताब है। हालांकि यह पुस्तक सत्तर-अस्सी के दशक में उनके छपे लेखों का संकलन है मगर आज भी प्रासंगिक है। हमारी स्कूलों की दीवारें तमाम नारों से भरी पड़ी हैं। स्कूल का एक अर्थ यह भी होता है कि सनातनी वाक्यों को दीवारों पर लिखा जाए। इन वाक्यों का कितना असर 'कल के भावी नागरिकों' पर हुआ है, यह दुनिया जानती है बल्कि स्कूल की दीवारों पर लिखे ये वाक्य मुंह चिढ़ाते हैं। 'अस्पृश्यता अपराध है' लेकिन स्कूल में जाति और धर्म बुरी तरह पसरे हुए हैं। जहां आज भी वंचित समाज के बच्चों का समावेशन नहीं हो सका। स्कूल की दीवारें बच्चों के संदर्भों व उनके अर्थ निर्माण को पूरी तरह से उपेक्षित करती है।

कुल मिलाकर पुस्तक, शिक्षा और समाज के मसलों को समझने में मददगार है। आखिर जैसी शिक्षा है वैसा ही तो समाज बनता है। हालांकि वर्तमान दौर में शिक्षा अकेली समाज को बदलने में लगता है कारगर न हो, मगर एक बड़ी भूमिका तो अदा कर सकती है। लेखक यह स्वीकार करता है कि 'समाज में बढ़ते अंधेरे की सैकड़ों परतों पर एक व्याकुल हताशा मगर एक उम्मीद कर छोटी-सी लौ के साथ अखबार, पत्रिकाओं में लिखता रहा हूं। हिंदी पट्टी के रहने वाले लेखक का मानना है कि वाकई में हमारे घरों में साहित्य की किताबों की कोई जगह ही नहीं है और यह बात पुस्तक के लेखों में भी प्रतिबिंबित होता है।'

कुछ बातें इस पुस्तक के लेखों की बनावट को लेकर। पुस्तक के लेखों में मुझे कोई क्रमबद्धता नहीं दिखाई देती। यही इस पुस्तक की खूबी कहना चाहिए। पाठक द्वारा पुस्तक के किसी भी लेख से पढ़ना प्रारंभ कर सकता है। पुस्तक के दूसरे संस्करण में अपेक्षा होगी कि प्रूफ की गलतियों को ठीक कर लिया जाए।

उपन्यास

महाभारत आख्यान

एस. तंकमणि अम्मा

साहित्यकार

संपर्क :
मणि मंदिरम, आनयरा,
तिरुवनंतपुरम-695029
(केरल)
मोः 9349193272

मलयालम के सुविख्यात साहित्यकार, प्रतिष्ठित इतिहासवेत्ता तथा यशस्वी पत्रकार पी.के. बालकृष्णन द्वारा विरचित उपन्यास है 'इनि ञान उरंगट्टे'। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1973 में हुआ। महाभारत का आधार ग्रहण करते हुए भी यह उपन्यास महाभारत कथा का पुनराख्यान नहीं रह गया है। इसमें महाभारत के कथा प्रसंगों और कथापात्रों का नितांत नूतन और स्वतंत्र पुनर्सृजन हुआ है।

महाभारत कथा को उपजीव्य बनाकर मलयालम के सुविख्यात साहित्यकार, प्रतिष्ठित इतिहासवेत्ता तथा यशस्वी पत्रकार पी.के. बालकृष्णन द्वारा विरचित उपन्यास है 'इनि ञान उरंगट्टे'। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1973 में हुआ। सन् 1974 के केरल साहित्य अकादेमी पुरस्कार, सन् 1978 के वयलार पुरस्कार आदि प्राप्त इस बहुचर्चित औपन्यासिक कृति ने पाठकों को इतना आकर्षित कर लिया है कि अब तक इसके उनतीस संस्करण निकल चुके हैं। इस कालजयी कृति के अंग्रेजी में दो अनुवाद प्रकाशित हैं तथा तमिल, कन्नड़ जैसी भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। इसके हिंदी अनुवाद का श्रेय जाता है लब्ध प्रतिष्ठ लेखक तथा अनुवादक प्रो. (डॉ.) जी. गोपीनाथन को। गोपीनाथन का यह अनुवाद 'अब मुझे सोने दो' शीर्षक से साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित हुआ है। अब हिंदी से अन्यान्य भारतीय भाषाओं में इस के अनुवाद होने की संभावना है।

महाभारत का आधार ग्रहण करते हुए भी यह उपन्यास महाभारत कथा का पुनराख्यान नहीं रह गया है। इसमें महाभारत के कथा प्रसंगों और कथापात्रों का नितांत नूतन और स्वतंत्र पुनर्सृजन हुआ है। कुरुक्षेत्र के भीषण युद्ध के त्रासद अंत के विरागपूर्ण अंतरिक्ष में उपन्यास के कथ्य का आरंभ होता है। कुरुक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त बंधुजनों को श्राद्धकर्म करने के लिए उद्यत युधिष्ठिर के सामने आकर मां कुंती इस रहस्य का पदार्फाश करती है कि कर्ण उसका ज्येष्ठ भ्राता है तथा उसका श्राद्ध पहले करना है। युधिष्ठिर पर वज्राघात के समान पड़ी यह वाणी उनके मन-मस्तिष्क को मथित कर देती है।

उपन्यास की संपूर्ण कथा कर्ण पर केंद्रित है। द्रौपदी की चिंतनधाराओं में महाभारत की कथा की प्रत्येक घटना पुनरुज्जीवित हो उठती है। युधिष्ठिर, संजय, कुंती आदि की स्मृतियां कथा को गति देती हैं। चेतना प्रवाह प्रणाली तथा पूर्वदीप्ति पद्धति में पिरोयी गई इसकी कथातंत्रियों में निद्राविहीन हो भय, संत्रास और उत्पीड़न में सहस्रों रातें बितानेवाली द्रौपदी अपनी जिंदगी के अतीत के परतों की ओर झांकती है। उसके स्वयंवर मंडप में कर्ण का आगमन, सूतपुत्र कहकर सभासदों द्वारा उसका उपहास और अपमान आदि दृश्य उसकी स्मृतियों में आ जाते हैं। अन्यान्य पात्रों की स्मृतियों से कर्ण के जन्म से लेकर उससे जुड़े समस्त कथा प्रसंगों का अनावरण होता है। द्रौपदी की स्मृतियों में भरी सभा में उसका वस्त्राक्षेप, कृष्ण की कृपा, विराट नगरी के अज्ञातवास आदि सारी घटनाएं उभर कर आती हैं। पांचों पतियों व बंधु-बांधवों के रहते हुए भी उसे उत्पीड़न की परंपरा की शिकार जो बननी पड़ी है उसके दर्दनाक चित्र भी इस कृति में अंकित है। कर्ण वध का प्रसंग भी अत्यधिक मार्मिक बन पड़ा है।

संपूर्ण उपन्यास में महाभारत के प्रमुख पात्र यत्किंचित रेखाओं में ही सही जीवंत हो उठते हैं। उनकी मनोग्रंथियों को खोलकर दिखाने का प्रयास भी हुआ है। कतिपय पात्र तो पाठकों के मन-मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव डाल देते हैं। द्रौपदी की स्मृतियों में महाभारत के कई पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं संजीदगी के साथ पाठकों के सामने अवतरित हो जाती हैं। एक प्रसंग प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है - 'द्रौपदी ने कुंती के बारे में सोचा। बेटों के लिए उसी तरह जीनेवाली मां और कौन है? प्रेम से पांडवों के लिए उसने हमेशा सुरक्षा का एक वृत्त बनाया। पुत्रों के लिए स्नेह की उत्कंठा में वह जीती थी। लेकिन उसे फिर कर्ण से प्रेम था क्या? इस धर्मसंकट के आंसू का क्या कारण हो सकता है? अपने प्रथम प्राणतुल्य पुत्र को आंसू के साथ उस प्रवाह में उसने क्यों बहा दिया था? साहचर्य शायद उस मां का पक्ष ले सकते हैं। फिर भी मन पूछ रहा है, युधिष्ठिर या अर्जुन को नदी में कुंती बहा सकती थी क्या?, 'तेरा कुल कौन-सा है'? - भरी सभा में यह प्रश्न सुनकर अर्जुन अगर सिर झुकाकर खड़ा होता तो, 'मैं उसकी मां हूं' यह कुंती चिल्लाकर नहीं कहती? (पृ. 150)

स्वयं की नियति के बारे में भी द्रौपदी सोचती है - 'प्रतापी पांचाल राज की पुत्री होकर यागाग्नि से जन्म लिया। पृथ्वी पर सबसे सुंदर राजकुमारी की प्रशंसा सुनकर अपने सौंदर्य को प्यार करती हुई बड़ी हुई। पांच विश्ववीर एक साथ पति के रूप में प्राप्त हुए।' इन विश्ववीर पतियों के होते हुए भी उसे आगे चलकर जो ग्लानि, उत्पीड़न, अवसाद आदि सहने

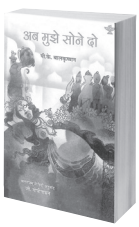

पुस्तक :
अब मुझे सोने दो
लेखक :
पी.के.बालकृष्णन
अनुवाद : डॉ. जी. गोपीनाथन
प्रकाशक :
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
पृष्ठ : 180
मूल्य : ₹ 140

पड़े, इसकी सोच में द्रौपदी का स्त्री-स्वत्व जाग उठता है। तभी तो वह सोचती है 'पुरुष से स्त्री जिस प्रेम की अपेक्षा रखती है, स्त्रित्व के सभी अभिमान का आधारभूत प्रेम उसे पांचों पतियों से कभी नहीं मिला।' (पृ. 153)

कुंती के साथ जोड़कर वह अपने पत्नीत्व पर विचार करती है। कुंती पांडु की पत्नी थी। सूर्य, इंद्र और मारुत की पत्नी थी। इन पतियों के साथ उस मां ने सहशयन किया। पांच पतिवाले उसकी स्थिति से वास्तव में इसमें क्या अंतर है? द्रौपदी के होंठों में आत्म परिहास का एक मंदहास खिला और अधखिला-सा मिट भी चला। मन जो मंत्रणा कर रहा है, वह तत्क्षण उसने साफ-साफ सुना -'कई पिताओं में एक मां से उत्पन्न पुत्रों के लिए नियति द्वारा बनाई गई एक पत्नी! द्रौपदी, तुम्हारे और कुंती के जीवन के द्वारा नियति एक हास्य कथा को जन्म दे रही थी।' (पृ. 151)

भीष्म पितामह, युधिष्ठिर, कृष्ण आदि के धर्माधर्म चिंतन संबंधी द्रौपदी की स्मृतियां उपन्यास को एक दार्शनिक आयाम प्रदान करती हैं। मनुष्य के जीवन-संघर्ष, उसकी नियति, उसकी असहायता आदि पर द्रौपदी का चिंतन उपन्यास को वर्तमान जीवन-प्रसंगों के साथ जोड़कर देखने की प्रेरणा देनेवाला है। मानव की शाश्वत जीवन-समस्याओं का विवेचन-विश्लेषण ही महाभारत की कथा के परिप्रेक्ष्य में इस उपन्यास में रेखांकित हुए हैं। युद्ध में जीत हासिल होने पर भी युधिष्ठिर का मन अस्वस्थ है। मुनि नारद से युधिष्ठिर का यह कथन उसकी सच्चाई खोलकर प्रस्तुत करता है-'दुखों की चिंता से थका मन और बंद हो रही आंखों को खोलकर जब भी मैं देखता हूं, इस असहाय द्रौपदी का दुख ही मुझे दिखता है। भोजन कराने में, निद्रा में, विपदाओं में मेरी सेवा करनेवाली इसके पिता, भाई और सारे स्वजन मर गए। उसके पांचों पुत्र भी मर गए। राज्य प्राप्त करने की मेरी त्वरा की आग में अपना सबकुछ राख हो गया। व्यथा से जल रही उसके चेहरे को देखकर मैं यह विश्वास कर ही नहीं पाता कि मैंने युद्ध जीत लिया है।' (पृ. 43)

द्रौपदी की स्मृतियों में कर्ण का जाज्वल्यमान चरित्र जलते दीपस्तंभ-सा आलोक फैलाता खड़ा होता है। कर्ण की महानता वह पहचान लेती है। तभी तो द्रौपदी समझ लेती है कि भीम ही नहीं, युधिष्ठिर भी कर्ण से जीवन-भिक्षा स्वीकार कर आज जी रहे हैं। नकुल और सहदेव भी कर्ण की कृपा से आज जिंदा हैं। वह पांडव पत्नी है। 'युधिष्ठिर के मरने से वह विधवा हो जाती। भीमसेन मरते, नकुल या सहदेव मरते तब भी उसको वैधव्य होता। उसे विश्वास हो रहा है कि वह विधवा नहीं हुई है तो वह कर्ण की कृपा से ही।' (पृ. 156)

पी.के. बालकृष्णन द्वारा विरचित इस बहुचर्चित औपन्यासिक कृति ने पाठकों को इतना आकर्षित कर लिया है कि अब तक इसके उनतीस संस्करण निकल चुके हैं। इस कालजयी कृति के अंग्रेजी में दो अनुवाद प्रकाशित हैं तथा तमिल, कन्नड़ जैसी भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

द्रौपदी द्वारा कर्ण के उदात्त व्यक्तित्व की स्वीकृति जो हुई है सचमुच वही इस उपन्यास की विलक्षण विशेषता है। शायद यही महत्वांकन उपन्यास का रचनोद्देश्य रहा है। कर्ण और अर्जुन के बीच के अतिभीषण युद्ध का विवरण संजय के मुंह से सुननेवाली मां कुंती और पत्नी द्रौपदी की मनोदशा का मार्मिक चित्र उपन्यास का और एक प्रमुख प्रसंग है। असमंजस में पड़े संजय इसे नियति का क्रूर विनोद ही मान लेता है। संजय कर्ण-अर्जुन के बीच के युद्ध का आंखों देखा चित्र प्रस्तुत करता है। 'मध्याह्न के सूर्य और जंगली आग की तरह उस दिन प्रज्वलित होनेवाला कर्ण मात्स्य और पांचाल सैनिकों को अपराह्न तक जला डाला।... कर्ण के अस्त्रों से काटे गए बाहु, सिर और शिरोमुकुट बाणों के साथ अंबर में उड़ रहे थे...।' (पृ. 163) आखिर कर्ण और अर्जुन के बीच के युद्ध की पराकाष्ठा आ गई। सारथी कृष्ण के निर्देश से अर्जुन ने दिव्यास्त्र का प्रयोग किया तो उसने कर्ण के गले को छेद डाला।

कुरुक्षेत्र के भीषण नर संहार से त्रस्त होकर द्रौपदी निस्तेज बैठी रही। कितने दिन-रातों से वह निद्राहीन पड़ी रही थी। भीम द्वारा मारे गए दुःशासन के रक्त का लेपन कर उसने अपने खुले केश बांधे किंतु उसका मन अशांति के अंगारों में जल रहा था। भगवान से उनकी एक ही प्रार्थना थी कि अब ऐसी नींद आ जाए जिसमें कुछ भी याद नहीं रहे। सोने के लिए लेटी उसके सम्मुख अर्जुन का 'चमकीला', भीम का 'बलिष्ठ' तथा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव के 'संकोची' रूप एक-एक करके उभरकर आते हैं। वीर कर्ण की स्मृति आते ही उसकी होंठों पर अनोखी मुस्कान छा जाती है। अंततः द्रौपदी के इन्हीं शब्दों के साथ उपन्यास की इति होती है -'युधिष्ठिर, अब मुझे सोने दो।' (पृ. 180)

उपन्यास का शीर्षक अत्यंत रोचक एवं सार्थक है। अनूदित कृति में उसी शीर्षक का भाषांतरण किया गया है। चेतना प्रवाह प्रणाली, पूर्व दीप्ति पद्धति, पात्रों की मनोग्रंथियों की विश्लेषणात्मक शैली आदि ने उपन्यास की शिल्प संरचना को एक नवोन्मेष और अपूर्व चारुता प्रदान की है। कथ्य एवं शिल्प, शैली दोनों के रूपांतरण में अनुवादक को अपूर्व सफलता मिली है। अनुवाद के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पहलुओं में निपुणता प्राप्त डॉ.गोपीनाथन के हाथों अनुवाद अत्यंत सरल बन पड़ा है। वे स्रोतभाषा मलयालम (जो उनकी मातृभाषा है) तथा लक्ष्य भाषा हिंदी में समान अधिकार रखनेवाले हैं। प्रस्तुत कृति से गुजरनेवाले पाठक को यही प्रतीत होता है कि वह किसी मौलिक कृति से गुजर रहा हो। अनुवाद की सर्वोत्तम कसौटी तो यही मानी जाती है। मौलिक कृति की सहजता और धारावाहिता को बरकरार रखने में भी अनुवादक को पूरी सफलता मिली है। मूलनिष्ठता, बोध गम्यता, पठनीयता, प्रयोजनसिद्धि जैसे अनुवाद समीक्षा के मुख्य सिद्धांतों के आधार पर भी यह अनुवाद पूर्णतया सफल निकला है।

महाभारत की कर्ण कथा के आधार पर विविध भारतीय भाषाओं की विविध विधाओं में विरचित साहित्य (यथा-शिवाजी गोविंद सावंत द्वारा मराठी में रचित 'मृत्युंजय' उपन्यास आदि) के साथ तुलनात्मक अध्ययन तथा तुलनात्मक शोध कार्य के लिए यह अनुवाद सुविधा प्रदान करता है। मलयालम से सीधे जिन भारतीय भाषाओं में कृति का अनुवाद संभव नहीं हो पाता, यह हिंदी अनुवाद उसके लिए दरवाजा खोल कर रख देता है। इस उपन्यास की समस्याएं देश-काल जयी हैं। युद्ध और शांति, स्त्री-उत्पीड़न, दलित उत्पीड़न आदि समस्याओं के जिंदा रहते, वर्तमान संदर्भ में इस उपन्यास की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। वर्तमान साहित्य के स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि से जोड़कर इसका पाठ किया जा सकता है।

कहानी

निम्न वर्ग का जीवंत दस्तावेज

नीरजा पांडेय

कथाकार

संपर्क :
14, अल्कापुरी कालोनी
लखनऊ-226022 (उ.प्र.)
मो. 9453101567

उषा शर्मा के 'बर्फ' कहानी संग्रह में हर तरह की 11 कहानियां संजोई हैं जिन्हें पढ़कर उनकी विविधतापूर्ण शैली का दर्शन होता है। मन को छू जाने वाली इन कहानियों में कहीं भी कहानी रचने के लिए भावातिरेक या कृत्रिम बुनावट नहीं है। ग्रामीण भाषा का प्रयोग एक कामवाली के मुंह से कराकर कहानी में स्वाभाविकता लाने का सुंदर प्रयास किया है। उनकी स्त्री आधुनिक होने के साथ-साथ परिवार, समाज को लेकर चलने वाली नारी है। उनकी कहानी की स्त्री पात्र आज के प्रगतिशील, पाश्चात्य के दुष्प्रभावों से ग्रसित, स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता की कतई पक्षधर नहीं है। देश और विदेश में रहने वाली स्त्री की मनोदशा का सुंदर चित्रण है। इन कहानियों के केंद्रीय पात्र के रूप में स्त्री विद्यमान है। अतः इन कहानियों को स्त्री विमर्श के रूप में भी देख सकते हैं।

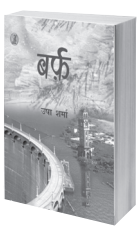

पुस्तक :
बर्फ
लेखक :
उषा शर्मा
प्रकाशक :
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ : 109
मूल्य : ₹ 395

मन के भावों को सुंदरता से चित्रित करती हृदयस्पर्शी कहानियों का यह सुंदर गुलदस्ता उषा शर्मा का 'बर्फ' कहानी संग्रह है। इसमें हर तरह की 11 कहानियां संजोई हैं। जिन्हें पढ़कर उनकी विविधतापूर्ण शैली का दर्शन होता है। मन को छू जाने वाली इन कहानियों में कहीं भी कहानी रचने के लिए भावातिरेक या कृत्रिम बुनावट नहीं है। ग्रामीण भाषा का प्रयोग एक कामवाली के मुंह से कराकर कहानी में स्वाभाविकता लाने का सुंदर प्रयास किया है।

उनकी स्त्री आधुनिक होने के साथ-साथ परिवार, समाज को लेकर चलने वाली नारी है। उनकी कहानी की स्त्री पात्र आज के प्रगतिशील, पाश्चात्य के दुष्प्रभावों से ग्रसित, स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखलता की कतई पक्षधर नहीं है। देश और विदेश में रहने वाली स्त्री की मनोदशा का सुंदर चित्रण है। इन कहानियों के केंद्रीय पात्र के रूप में स्त्री विद्यमान है। अतः इन कहानियों को स्त्री विमर्श के रूप में भी देख सकते हैं।

कहानी संग्रह बर्फ की प्रथम कहानी भी बर्फ है। बर्फ बहुत ही संवेदनशील कहानी है। विदेश में रहकर कितना अकेलापन महसूस होता है, वहां का रहन सहन, सुविधाएं, समाज से कट कर रहना कहानी की नायिका को अंदर तक व्यथित कर जाता है। उसे भारत की तुलना में वहां की संवेदनहीनता, दमघोटू लगने लगती है। बगल के घर में क्या घट रहा है किसी को इसकी खबर नहीं होती। किसी की मृत्यु तक में कोई शामिल नहीं होता। किराए की गाड़ी आकर लाश उठा ले जाती है। भारतीय होने के नाते नायिका का मन व्यथित होता है और उसकी आंखों में आंसू बह उठते हैं। वह कहती हैं ''मैं अभी भी खिड़की से चिपकी खड़ी थी। मेरे आंसुओं से शीशे पर अब तक ढेर सारी भाप बन गई थी जिसके बाहर की सब चीजें मुझे धुंधली दिख रही थीं।''

कहानी अंत तक एक जिज्ञासा का प्रश्न छोड़ जाती है? यही उनकी कहानी की विशेषता है। अंत तक रोचकता बनी रहती है। पाठक जिससे बंधा रहता है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'मिसेज रंगनाथन कॉलिंग' भी अपने ढंग की निराली कहानी है। वातार्लाप शैली में लिखी गई यह कहानी बड़े घर की औरतों की मानसिकता को सुंदरता से दर्शाती है। बॉस की बीबी का फोन आने पर बिना मन के भी जाना जरूरी हो जाता है।

भारतीय मानसिकता यहां भी आड़े आती है, जो विदेश के राग रंग में नहीं रम पाती है। यहां तक कि पति और बेटे के द्वारा भी वह चिढ़ाई जाती है। उसे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अपने घमंड में चूर बॉस की बीबी की नजर में उनका कुत्ता टॉमी ज्यादा महत्वपूर्ण है। उनकी चाटुकारिता करने वाला ही उनका प्रिय हो जाता है।

संग्रह की तीसरी कहानी 'कोकी चे' में बल्गारिया की भाषा का काफी इस्तेमाल किया गया है। कहानी साधारण है, पर अंत में यह बताने का प्रयास किया है कि किसी दूसरे के बच्चे को पाल लेने के बाद चाहे उसे कितना ही प्यार किया जाए पर वह अपना नहीं होता है।

अगली कहानी 'मंथन' गरीब काम करने वाली की मानसिकता को कुशलता से दशार्ती है। पैसे से भले ही कोई गरीब हो पर विचारों से वह गरीब नहीं होता। बेला के माध्यम से लेखिका ने ग्रामीण भाषा का इस्तेमाल भी बखूबी किया है और अंत में यह सिद्ध कर दिया कि गरीब काम वाली का दिल इन कोठी वाली बड़ी मालकिनों से बहुत बड़ा है। वह अपनी सारी इच्छाओं को मार कर भी परिवार की खुशी के लिए सब कुछ हंसते-हंसते बर्दाश्त कर लेती हैं। कहानी में रोचकता के साथ यह बहुत अच्छा संदेश भी दिया है।

'निर्णय' कहानी की नायिका शिखा के मनका अंर्तद्वंद्व का बहुत ही कुशलता से उषा जी ने चित्रण किया है। शक करने वाले पति के स्वभाव से नायिका शिखा बहुत ही दुखी होती है और उसका साथ निभाने के सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। कहानी का अंत लेखिका के साहस को दर्शाता है। उसकी नायिका कहानी के अंत में अपने को मुक्त करके आजाद पंछी की तरह खुली हवा में सांस लेती है।

'फूलदेही की छत' कहानी में अपना घर छिनने का दर्द क्या होता है भले ही वह बांध बनाने के लिए डूबने के कारण ही क्यों न हो इसका चित्रण उषा जी ने बखूबी किया है। भोले पहाड़ी लोग अपना सब कुछ देकर भी देश के विकास के काम आ सकें तो अपने को धन्य समझते हैं। भोली फूलदेही कहती है, 'अब तो सब डूब जाएगा, साल दो साल में। सरकार बांध बना रही है न! ठीक ही तो है सब कुछ देश के लिए होगा और फिर गढ़वाल की तो परंपरा है बेटा देश के लिए बलिदान देने की। रोते हुए फूलदेही बोली, 'पहले पति गया, फिर बेटा अब ये खेत, ये घर, ये हमारे बाप, दादा की जमीन...।

कहानी पढ़ते-पढ़ते टिहरी के लोगों का दर्द आंखों में समा जाता है। 'सूरज सहमा सा' कहानी में तो लेखिका ने पहाड़ की जिंदगी की वास्तविकता खोलकर रख दी है। निम्न वर्ग का परिवार उसकी समस्याएं और सबसे हृदय विदारक घटना होती है। पैसे के अभाव में कम उम्र की लड़की का

उषा शर्मा की ये कहानियां कुल मिलाकर आम मध्यम निम्न वर्ग जो कि हमारे देश का सबसे बड़ा हिस्सा है, के बदलते जीवन, उसके सुख-दुःख का जीवंत दस्तावेज है। ये कहानियां सिर्फ हमारा मनोरंजन नहीं करतीं बल्कि समसामयिक यथार्थ से परिचित कराती हैं। हमें समय के साथ चलने का दिशाबोध कराती हैं। साथ ही पाठकों पर असरदार प्रभाव डालती हैं। इनकी भाषा इन्हें रोचक और पठनीय भी बनाती है।

विवाह किसी उम्रदराज व्यक्ति से हो जाना है। यह घटना नायिका की सौत को भी हिलाकर रख देती है।

उषा शर्मा ने बड़ी कुशलता से इस कहानी का ताना-बाना बुना है। 'अच्छा चलता हूं' कहानी में एक कठोर स्वभाव के पिता के दिल की दास्तान बड़ी सुंदरता से लेखिका ने व्यक्त की है। कोई ऊपर से कितना भी कठोर बनने की कोशिश क्यों न करे, अंदर से अंतिम समय वह सब कुछ भूलकर अपनी संतान को याद जरूर करता है। मिस्टर नेगी की हर भावना का बहुत सुंदरता से चित्रण किया गया है। शैली बहुत मंजी हुई है।

'मां मर गई' कहानी तो आंखों में आंसू ला देती है, घर से बाहर निकल कर बेटे दुनिया के ऐश्वर्य में कितना खो जाते हैं कि उन्हें अपनी मां की याद भी नहीं रहती है। यहां तक कि मां की मृत्यु के नाम भी उन्हें बड़ी मुश्किल से समय निकालना पड़ता है। कहानी का यह संवाद दिल को छू लेता है, 'क्या पैसा-पैसा भैया। इसके अलावा भी बहुत कुछ है दुनिया में।'

'झूलाघर' कहानी तो हर नौकरी पेशा स्त्री के उस अपराधबोध को दशार्ती है जिसमें हर मां को लगता है कि वह नौकरी करके अपने बच्चे की उपेक्षा कर रही है। पर इसका हल भी कहानी की नायिका नीलू को मिसेज कपूर के रूप में मिल जाता है, जिससे केवल नायिका का ही भ्रम दूर नहीं होता बल्कि हर नौकरी पेशा मां का भ्रम दूर हो जाता है। अंत में नायिका नीलू स्वयं से कह उठती है, 'नहीं मैं स्वयं को बदलूंगी। मैंने इस निश्चय से आंखें उठाकर मिसेज कपूर की ओर देखा। उनकी आंखों में संतोष था, विश्वास था और थी शांति।''

'बर्फ' कहानी संग्रह की आखिरी कहानी 'खोटी चवन्नी' जितनी मनोरंजक है उतनी ही प्रेरणादायक भी। शुरू से अंत तक बांधे रखने की अभूतपूर्व क्षमता है आपकी लेखनी में।

किसी असहाय को सहायता मिल जाने पर वह कितनी ऊंचाई तक जा सकता है इसका जीता-जागता उदाहरण है कहानी की मात्र दिवा, जिसे सब 'पागल की बेटी', 'छोटी खोटी चवन्नी' कहकर चिढ़ाते थे। वह मेडिकल की पढ़ाई करके डाक्टर बन गई थी।

कहानीकार उषा शर्मा ने सभी कहानियों में भावानुकूल तथा पात्रानुकूल भाषा का सुंदर प्रयोग किया है, उन्होंने जहां एवरी बडी, डिस्कस, पार्टी, इन्जॉय, कॉलिंग आदि अंग्रेजी शब्दों का भी बखूबी इस्तेमाल किया है। कहीं-कहीं लोकभाषा 'एक माई चला' और 'तबियत ठीक नाहीं हौ का? का भयल? का भी सुंदर प्रयोग किया है।

ये कहानियां कुल मिलाकर आम मध्यम निम्न वर्ग जो कि हमारे देश का सबसे बड़ा हिस्सा है, के बदलते जीवन, उसके सुख-दुःख का जीवंत दस्तावेज है। ये कहानियां सिर्फ हमारा मनोरंजन नहीं करतीं बल्कि समसामयिक यथार्थ से परिचित कराती हैं। हमें समय के साथ चलने का दिशाबोध कराती हैं। साथ ही पाठकों पर असरदार प्रभाव डालती हैं। इनकी भाषा इन्हें रोचक और पठनीय भी बनाती है। ■■

इतिहास

बिहार दर्शन एक अंतर्कथा

मुकेश कुमार

शिक्षक

संपर्क :
सहायक प्रोफेसर
महात्मा गांधी-फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 9431690824

आचार्य विमल किशोर मिश्र की हालिया प्रकाशित पुस्तक बिहारः एक सामान्य परिचय का प्रकाशन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा भारतीय भाषाओं में मानक ग्रंथ तैयार कराने की योजना का हिस्सा है। बिहार की भौगोलिक स्थिति पर भी अलग से कई पुस्तकें मिलती हैं। लेकिन इस पुस्तक की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह पुस्तक पाठकों को एक ही साथ समग्रता में बिहार के अब तक ज्ञात पूरे इतिहास, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, भौगोलिक स्थिति आदि से संक्षिप्त परिचय कराती है। बिहार के ऐतिहासिक धरोहरों एवं पर्यटन स्थलों को भी पुस्तक में यथोचित स्थान दिया गया है।

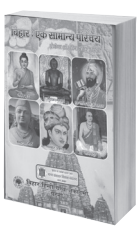

पुस्तक :
बिहारः एक सामान्य परिचय
लेखक :
प्रो. विमल किशोर मिश्र
प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना (बिहार)
पृष्ठ : 513
मूल्य : ₹ 350

'बिहारः एक सामान्य परिचय' नामक यह पुस्तक इतिहास के आचार्य विमल किशोर मिश्र की हालिया प्रकाशित रचना है। पुस्तक का प्रकाशन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा भारतीय भाषाओं में मानक ग्रंथ तैयार कराने की योजना का हिस्सा है। हालाँकि बिहार पर केंद्रित यह कोई पहली किताब नहीं है, इससे पहले भी कई लेखकों की पुस्तकें मिलती है। मेगास्थनीज, फाहियान, ह्वेनसांग आदि विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांत में भी बिहार का पर्याप्त वर्णन मिलता है। प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक भारतीय इतिहास से संबंधित अधिकांश लेखकों की पुस्तकों में भी बिहार के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन का पर्याप्त चित्रण हुआ है। बिहार की भौगोलिक स्थिति पर भी अलग से कई पुस्तकें मिलती हैं लेकिन इस पुस्तक की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह पुस्तक पाठकों को एक ही साथ समग्रता में बिहार के अब तक ज्ञात पूरे इतिहास, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, भौगोलिक स्थिति आदि से संक्षिप्त परिचय कराती है। बिहार के ऐतिहासिक धरोहरों एवं पर्यटन स्थलों को भी पुस्तक में यथोचित स्थान दिया गया है।

बौद्ध विहारों की बहुलता के कारण 1198 में बख्तियार खिलजी के विजय अभियान के दौरान इस क्षेत्र के लिए बिहार शब्द प्रचलित हुआ। बाद में मुगलों के शासनकाल में बिहार एक सूबा बन गया। आज बिहार से अलग होकर झारखंड प्रांत अस्तित्व में आ चुका है। लेकिन पुराने बिहार में वर्तमान झारखंड का इतिहास भी स्वाभाविक तौर पर समाहित रहा है। यहां कई स्थानों पर पुरापाषाणकालीन और नव-पाषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। पुरापाषाणकालीन संस्कृति के उद्भव और विकास के आरंभिक प्रमाण दक्षिण बिहार के छोटानागपुर के पठार से प्राप्त हुए हैं। कई स्थानों से उस वक्त उपयोग की जाने वाली पत्थर की कुल्हाड़ी और चाकू, खुरचनी जैसे औजार प्राप्त हुए हैं। ज्ञात हो कि उस वक्त तक स्थाई बस्तियों की स्थापना नहीं हुई थी और मनुष्य यायावर की जिंदगी जीते थे। 'आवास के रूप में पहाड़ की चट्टान अथवा गुफाओं का सहारा लिया जाता था। वर्तमान बिहार के गया जिले के शेरघाटी में ऐसे दो चट्टानी शरण स्थली' (पृ. 2) का भी पता चला है। उसी प्रकार नव-पाषाणकालीन अवशेषों की प्राप्ति 'चिरांद, चेचर, ताराडीह, मनेर और सेनुआर' (पृ. 2) से प्राप्त हुए हैं। नवपाषाणकाल तक आते-आते मनुष्य ने स्थाई तौर पर अपनी बस्तियां बसानी शुरू कर दी थी। इसके बाद ही धातु युग के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ। यह तो सर्वज्ञात है कि धातुओं में सबसे पहले तांबे को प्रयोग में लाया गया। 'बिहार के ताराडीह, मनेर, सेनुआर, चिरांद, चेचर आदि जगहों से ताम्र-पाषाणिक संस्कृति के अवशेष पाए गए हैं।' (पृ. 3) इन स्थलों से शिकार, युद्ध, शिल्प एवं कृषि कार्य में उपयोग किए गए औजार-हथियार के साथ-साथ काले, लाल एवं चित्रित मृदभांड़ मिले हैं। इसके बाद जब लौह-युग का आरंभ हुआ तब कृषि का विस्तार मुमकिन हो पाया। 'लोहे के व्यवहार का पहला साक्ष्य चिरांद और ताराडीह में मिला है।' (पृ. 3) लोहे के प्रयोग से जन-जीवन पहले की अपेक्षा अत्यंत ही सुगम हो गया।

पुस्तक के लेखक ने पूर्ववर्ती इतिहासकारों की इस स्थापना को बिना किसी वाद-विवाद के कबूल किया है कि आर्य मध्य एशिया से भारत आए थे। 'ऋग्वेद के भौगोलिक संदर्भों से ज्ञात होता है कि बिहार में आर्यों का आवास नहीं था। इस क्षेत्र में अनार्य बसते थे। ऋग्वेद (पृ. 53.14) में 'कीकट' नामक एक प्रदेश का उल्लेख हुआ है जिसका शासक परमाँगद था। परवर्ती कृतियों में मगध को ही कीकट कहा गया है।' (पृ. 3) उत्तर वैदिक काल के प्रारंभिक दौर में आर्यों का गंगा घाटी के क्षेत्र में विस्तार हुआ और ये बिहार समेत पूर्वी भारत में फैल गए। शतपथ-ब्राह्मण से पता चलता है कि आर्यों ने बिहार के पूर्वी भाग में गंडक नदी के पार मिथिला क्षेत्र में लोहे के औजारों के जरिए जंगलों को काटकर बस्ती बसाई। 'यह

बिहार में आर्यों की पहली बस्ती थी।' (पृ. 4)

प्राचीन भारत में सातवीं सदी ई. पूर्व में राजतंत्र के स्थान पर जिस गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था- वैशाली गणतंत्र की चर्चा मिलती है, उसकी स्थापना भी बिहार में ही हुई थी। इसे विश्व का प्रथम गणराज्य होने का श्रेय भी प्राप्त है। हालांकि यह वर्तमान लोकतंत्र से भिन्न छोटे-छोटे राज्य के राजाओं का ही संघ था। यह वही दौर था, जब छठी सदी ईसा पूर्व में भारत में 16 महाजनपद अस्तित्व में आए मगध, वज्जि और अंग जैसे महाजनपद का उल्लेख मिलता है, जो बिहार में थे। बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध और अंतिम जैन तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर इसी कालखंड में यहीं पैदा हुए। महावीर के पूर्व 23 तीर्थंकरों में से और भी कई तीर्थंकर यहां की ही धरती पर पैदा हुए थे। कालांतर में मगध एक शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा। बिंबिसार व उनके पुत्र अजातशत्रु (हर्यक वंश) जैसे शासकों के कुशल नेतृत्व में मगध का चहुंमुखी विस्तार हुआ। तत्पश्चात शिशुनाग (नाग वंश) ने अपने पूर्ववर्ती शासकों की विस्तारवादी नीति को जारी रखा और अवंति, वत्स आदि महाजनपद को भी मगध के अधीन कर लिया। शिशुनाग के उत्तराधिकारी कालाशोक ने तो कलिंग पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। नंद वंश के संस्थापक महापद्मनंद ने बिंबिसार द्वारा प्रारंभ किए गए कार्य को पूरा कर मगध को भारत का सर्वशक्तिशाली एवं विस्तृत राज्य बना दिया। यूनानी राजा सिकंदर के आक्रमण के वक्त यहां घनानंद (नंद वंशीय शासक) का शासन था, जिसके पास एक विशाल सेना थी। जिसके भय से सिकंदर के सैनिक भयाक्रांत होकर हमले की हिम्मत तक न जुटा पाए थे। इसके उपरांत 'चंद्रगुप्त मौर्य (मौर्य वंश के संस्थापक) ने ही भारतीय इतिहास में प्रथम साम्राज्य प्रस्तुत किया जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र अखिल भारतीय साम्राज्य का केंद्र बन गया।' (पृ. 10) चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित मौर्य वंश का प्राचीन भारत के इतिहास में अति महत्वपूर्ण स्थान है। इसी से भारत के क्रमबद्ध एवं एकरूप इतिहास की शुरुआत मानी जाती है। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज की 'इंडिका' और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से भी मौर्य काल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। 'वास्तव में वह भारत का पहला ऐतिहासिक सम्राट था, जिसने आज से लगभग 2300 वर्ष पूर्व भारतीय एकता का स्वप्न साकार किया था।' (पृ. 13) उसने एक शक्तिशाली

लेखक प्रो. विमल किशोर मिश्र ने बिहार के ऐतिहासिक स्थलों - धरोहरों व प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक की विभिन्न क्षेत्रों की प्रमुख हस्तियों से भी संक्षिप्त परिचय कराया है। बिहार की कला, स्थापत्य कला, नृत्य कला, मूर्ति कला, संस्कृति, पर्व-त्योहार आदि को भी पुस्तक में समुचित स्थान दिया गया है।

केंद्रीय प्रशासन के अंतर्गत प्रांतीय, स्थानीय व ग्रामीण प्रशासन की उन्नत व्यवस्था की थी। चंद्रगुप्त मौर्य के बाद बिंदुसार ने अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी और सुदूर दक्षिण स्थित मैसूर तक पूरे भारतीय महाद्वीप में मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया। विदेशों से भी मौर्य साम्राज्य के अच्छे तालुकात थे। बिंदुसार की मृत्यु के बाद अशोक सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। अशोक ने कलिंग युद्ध में हुई हिंसा-रक्तपात से मर्माहत होकर युद्ध विजय के स्थान पर धम्म विजय का रास्ता अख्तियार कर लिया। सशस्त्र अभियानों का परित्याग कर अहिंसा पर आधारित बौद्ध धर्म को अपना लिया। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए श्रीलंका सहित अन्य देशों में दूत भेजे। इस प्रकार एशिया के विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का श्रेय अशोक को ही प्राप्त है। उसने 'जाति, भाषा और धर्म का भेदभाव किए बिना सभी मनुष्यों के कल्याण के लिए कार्य किया। अशोक ने मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए जितना कार्य किया, उसके आधार पर उसने इतिहास में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया और वह 'अशोक महान' के रूप में विख्यात हुआ।' (पृ. 19) मौर्य वंश के अंतिम शासक वृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यभूति शुंग ने कर दी और खुद शासक बन गया। ई. सन की पहली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुषाणों ने कनिष्क के नेतृत्व में मगध पर कब्जा कर लिया और विशाल साम्राज्य स्थापित किया। किंतु इस बार सत्ता का केंद्र पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) से स्थानांतरित होकर पुरुषपुर (वर्तमान पेशावर) राजधानी बन गया। ईसा की चैथी सदी में गुप्त वंश के नेतृत्व में एक बार फिर बिहार के गौरव का पुनरुद्धार हुआ। चंद्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का तीसरा शासक हुआ, जिसने मगध साम्राज्य की खोई हुई प्रतिष्ठा की पुनर्वापसी की। उसके बाद समुद्रगुप्त जैसे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न उत्तराधिकारी ने सिंहासन संभाला, जिनके नेतृत्व में मगध साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा। 'उसका साम्राज्य हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र से लेकर पश्चिम में यमुना और चंबल नदियों तक विस्तृत हो गया।' (पृ. 23) समुद्रगुप्त के बाद महत्वपूर्ण प्रतापी शासक चंद्रगुप्त द्वितीय हुआ, जिसने उज्जैन को गुप्त साम्राज्य की दूसरी राजधानी बनाया। मेहरौली स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने संपूर्ण बंगाल पर विजय हासिल की थी और उसका साम्राज्य हिमालय से नर्मदा नदी और पूर्वी बंगाल से काठियावाड़ तक फैला हुआ था। इनके राजदरबार में कालिदास, विशाखदत्त, अमर सिंह, घटरबर्पर, बैताल, धनवंतरी, बराहमिहिर, वीरसेन जैसे नवरत्न रहते थे। भारत आने वाला प्रथम चीनी यात्री फाहियान भी इन्हीं के शासनकाल में भारत आया। इस काल में कला, स्थापत्य और मूर्ति निर्माण का विकास होने के साथ-साथ भारत का सांस्कृतिक विकास चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया था। गुप्त वंशीय शासक कुमारगुप्त ने नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना की थी, जो तत्कालीन विश्व का सर्वप्रमुख शिक्षा केंद्र था। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद का बिहार विभिन्न शक्तियों के बीच की संघर्षस्थली में तब्दील हो गया। सातवीं सदी में हर्षवर्धन ने मगध पर अधिकार कर लिया। आठवीं सदी में बंगाल के पाल वंशीय शासक गोपाल ने मगध पर कब्जा कर लिया। उसने नालंदा के समीप ओदंतपुरी में एक बौद्ध विहार, जिसे ओदंतपुरी विश्वविद्यालय भी कहा जाता है, की स्थापना की। उसके उत्तराधिकारी के तौर पर धर्मपाल ने शासन की बागडोर संभाली। धर्मपाल की गिनती भारत के महान शासक के रूप में की जाती है। उसने वर्तमान भागलपुर के समीप विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की थी, जहां बौद्ध धर्म के तंत्रयान शाखा की शिक्षा दी जाती थी।

लेखक ने भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद को उद्धृत करते हुए ठीक ही लिखा है कि 'वर्षों से बिहार का इतिहास भारत का इतिहास रहा है।' लेखक ने बिहार के प्राचीन इतिहास से लेकर मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं को पुस्तक में यथोचित स्थान दिया है। बारहवीं सदी में बख्तियार खिलजी के हमले के बाद से ही बंगाल-बिहार पर दिल्ली सल्तनत का प्रभुत्व स्थापित हो गया। बंगाल

के सूबेदारों ने दिल्ली सल्तनत से बार-बार स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। लोदी वंश के शासकों ने भी बिहार को अपने अधीन कर लिया। पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) में जब बाबर ने इब्राहिम लोदी को परास्त कर दिल्ली की गद्दी पर कब्जा कर लिया तब बिहार मुगलों के अधीन आ गया। मुगल शासक हुमायूं के समय बिहार के सासाराम के अफगान सरदार शेरशाह ने शुरुआती असफलता के बाद अंततः 1539 ई. में बक्सर के समीप चैसा के मैदान में हुमायूं को परास्त कर दिल्ली की गद्दी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। शेरशाह ने अपने पांच वर्ष के संक्षिप्त शासनकाल में अद्वितीय प्रशासनिक उपलब्धियां दर्ज कीं। शेरशाह का शासन-प्रबंध, सैनिक व्यवस्था, धार्मिक उदारता तथा कला-कौशल के क्षेत्र में उसकी उपलब्धियां अकबर के लिए मार्ग-प्रदर्शक साबित हुई, इसलिए उसे अकबर का पूर्ववर्ती भी कहा जाता है। (पृ. 48) 1540 ई. में शेरशाह (शूर वंश) ने बिहार को बंगाल से अलग कर स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व तो प्रदान किया किंतु वह इसे बहुत व्यवस्थित न कर पाया। शूर वंश के हाथ से सत्ता एक बार फिर मुगलों ने हासिल कर लिया। मुगल बादशाह अकबर के शासनकाल में ही मुगलों ने बिहार में सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की। औरंगजेब की मृत्यु के बाद बिहार एक बार फिर बंगाल के अधीन चला गया।

बिहार में 17वीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आगमन की शुरुआत हुई। पुर्तगाली, फ्रांसिसी और अंग्रेज व्यापारियों का यहां आगमन हुआ। 1757 ई. के पलासी के युद्ध में बंगाल की पराजय और फिर 1764 ई. में बक्सर युद्ध में मुगल बादशाह, अवध के नवाब और बंगाल की संयुक्त सेना को अंग्रेज परास्त करने में कामयाब रहे। उस वक्त से बिहार पर ईस्ट इंडिया कंपनी का नियंत्रण स्थापित हो गया। उसके बाद के इतिहास पर भी लेखक ने अपनी इस पुस्तक में विस्तृत प्रकाश डाला है। लेखक ने बिहार के ऐतिहासिक स्थलों/धरोहरों व प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक की विभिन्न क्षेत्रों की प्रमुख हस्तियों से भी संक्षिप्त परिचय कराया है। बिहार की कला, स्थापत्य कला, नृत्य कला, मूर्ति कला, संस्कृति, पर्व-त्योहार आदि को भी पुस्तक में समुचित स्थान दिया गया है। अंग्रेजी राज की गुलामी के खिलाफ बिहार में हुए विभिन्न प्रतिरोधों का भी इसमें जिक्र मिलता है। 1770 ई. के नोनिया विद्रोह, चेर विद्रोह, तमार विद्रोह, हो विद्रोह, कोल विद्रोह, भूमिज विद्रोह, संथाल विद्रोह-1855-56, 1857 का विद्रोह, मुंडा विद्रोह, ताना भगत आंदोलन 1913-14, क्रांतिकारी आंदोलन से लेकर गांधी के चंपारण सत्याग्रह-1917, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, स्वामी सहजानंद सरस्वती के किसान आंदोलन व भारत छोड़ो आंदोलन का तो जिक्र मिलता है किंतु 1780 के आस-पास तिलकामांझी द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ किए गए विद्रोह की इस पुस्तक में कहीं चर्चा नहीं मिलती है।

पुस्तक में राज्य की समाज व्यवस्था को पूरी तरह से छोड़ दिया गया है, जिस कारण यह अधूरा-सा लगता है। वस्तुतः हर रचना की अपनी सीमा होती है और किसी लेखक के लिए यह मुमकिन नहीं होता है कि वह अपनी एक रचना में बिहार जैसे प्रांत, जिसका इतना लंबा इतिहास रहा है, के सभी पहलुओं का समुचित चित्रण कर सके। इस मायने में इस पुस्तक की भी अपनी सीमा है। बावजूद इसके बिहार के अतीत से लेकर वर्तमान तक के राजनैतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक इतिहास से संबंधित तथ्यों को लेखक ने इस पुस्तक में अत्यंत ही सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। इस मायने में यह पुस्तक अत्यंत ही ज्ञानोपयोगी, सूचनाप्रद, दिलचस्प व पठनीय है। खासकर विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के छात्रों के लिए यह पुस्तक अत्यंत ही उपयोगी है।

1 अप्रैल, 1912 में बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग कर दिया गया और अंततः 1935 के अधिनियम के तहत उड़ीसा को बिहार से अलग कर दिया गया। 15 नवंबर 2000 ई. में बिहार से अलग झारखंड प्रांत अस्तित्व में आया। पुस्तक में बिहार की वर्तमान राजव्यवस्था का भी खाका पेश किया गया है, जिससे बिहार की विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका से संबंधित जानकारी प्राप्त होती है। राज्य की भौगोलिक स्थिति, ऋतुओं, नदी, जलप्रपात, जंगल, कृषि-फसल, व्यापार के साथ-साथ विभिन्न जल-परियोजनाओं, विद्युत परियोजनाओं, राजमार्गों आदि से भी यह पुस्तक पाठकों को वाकिफ कराती है।

झारखंड अलग हो जाने के बाद बिहार की अर्थव्यवस्था का भी पुस्तक में जायजा लिया गया है। वर्तमान बिहार के पास आंतरिक संसाधनों की काफी कमी हो गई है। श्रम शक्ति और भूमि को छोड़कर राज्य के पास दूसरे प्राकृतिक संसाधन- खनिज आदि लगभग नहीं के बराबर है। इस कारण राजस्व प्राप्ति में भी कमी आ गई है। अविभाजित बिहार के कुल राजस्व का 63 फीसदी झारखंड के पास चला गया है। (पृ. 380) प्रति व्यक्ति भूमि उपलब्धता भी कम हो गई है और कृषि पर बोझ काफी बढ़ गया है। इस स्थिति से उबरने हेतु लेखक ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देने पर बल दिया है। बिहार में पंचवर्षीय योजना के तहत चलाए गए कार्यक्रमों, हरित क्रांति आदि की भी पुस्तक में चर्चा की गई है। राज्य में गरीबी उन्मूलन हेतु समय-समय पर चलाई गई योजनाओं, सामाजिक सुरक्षा से संबंधित योजनाओं एवं औद्योगिक विकास की संभावनाओं की तरफ भी लेखक ने संकेत किया है। राज्य की वस्तुगत परिस्थिति को देखते हुए लेखक की स्पष्ट मान्यता है कि कृषि आधारित उद्योगों के विकास से ही बिहार में औद्योगिक विकास की नींव डाली जा सकती है। (पृ. 416) राज्य में सिंचाई व्यवस्था की बदहाली का तो लेखक ने जिक्र किया है, किंतु प्रगतिशील भूमिसुधार के सवाल को छोड़ दिया है, जबकि बिहार में भूमि सुधार के बगैर कृषि सुधार मुमकिन नहीं जान पड़ता है। वर्तमान में लगभग 20 लाख परिवार भूमिहीन हैं। राज्य से प्रति वर्ष लाखों मजदूर बेबसी की हालत में पलायन कर जाते हैं।

पुस्तक में राज्य की समाज व्यवस्था को पूरी तरह से छोड़ दिया गया है, जिस कारण यह अधूरा-सा लगता है। वस्तुतः हर रचना की अपनी सीमा होती है और किसी लेखक के लिए यह मुमकिन नहीं होता है कि वह अपनी एक रचना में बिहार जैसे प्रांत, जिसका इतना लंबा इतिहास रहा है, के सभी पहलुओं का समुचित चित्रण कर सके। इस मायने में इस पुस्तक की भी अपनी सीमा है। बावजूद इसके बिहार के अतीत से लेकर वर्तमान तक के राजनैतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक इतिहास से संबंधित तथ्यों को लेखक ने इस पुस्तक में अत्यंत ही सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। इस मायने में यह पुस्तक अत्यंत ही ज्ञानोपयोगी, सूचनाप्रद, दिलचस्प व पठनीय है। खासकर विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के छात्रों के लिए यह पुस्तक अत्यंत ही उपयोगी है। आम पाठकों के लिए बिहार के अतीत और वर्तमान के विभिन्न पहलू को जानने-समझने की दृष्टि से भी पुस्तक की अपनी अहमियत है।

कविता

असमाप्त कविता का कवि

मनोज मोहन

साहित्यकार

संपर्क :
एल.पी.-61/बी, पितमपुरा,
दिल्ली-110034
मो. 8506014917

सप्तक में शामिल कुंवर नारायण ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जो अज्ञेय, मुक्तिबोध के बाद साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा को आगे बढ़ाने में सक्षम सिद्ध हुए। यही कारण है कि उनकी कविता चिंतनशील मस्तिष्क को उर्वर भूमि प्रदान करती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी बेहतर कविता लिखने का रास्ता सुझाती है। उनकी कविताओं में सूक्ष्म मानवीय अनुभूतियों के साथ विराट साभ्यतिक चिंतन एवं कल्पना का सहज समावेश दिखता है।

कुंवर नारायण हमारे समय के चिंतक कवि रहे हैं। उनके प्रथम कविता संग्रह चक्रव्यूह का प्रकाशन काल 1956 है और अब मृत्योपरांत उनकी कविताओं का लगभग आखिरी संग्रह 'सब इतना असमाप्त' प्रकाशित है। इस संग्रह में शामिल अधिकांश कविताएं वर्ष 2010 के बाद की लिखी हुई हैं। यहां कुछ अन्य काव्य प्रयोग भी देखने को मिलते हैं जो कविता और उसकी एक बड़ी दुनिया के बीच कुंवरजी के कवि मन की निरंतर आवाजाही का प्रमाण है। इस संग्रह की अंतिम कविता की अंतिम चंद पंक्तियां मानो उनके अपने जीवन को सिमटते हुए देख पाने की जो कवि-दृष्टि है वह दृष्टि इस कविता को क्लासिक कविता की श्रेणी में ला खड़ा करती है। कितना रहस्यमय है तुम्हारा स्पर्श/कि इतना जीकर भी उतना ही प्यासा हूं/इतना पाकर भी उतना ही आकांक्षी/सब कुछ जान कर भी उतना ही अनभिज्ञ/बार बार चाही हुई चीजों को/भरपूर पाकर भी उतना ही अतृप्त/हर क्षण समाप्त होते हुए भी/उतना ही असमाप्त। संग्रह की भूमिका में उनकी पत्नी भारती नारायण लिखती हैं - 'यहां कुछ कविताएं आत्मकथात्मक हैं। ये इधर के वर्षों की उनकी मनःस्थिति को प्रकट करती हैं, जैसे कि एक प्रेम-भाव की निरंतरता; बढ़ती उम्र और मृत्यु का ख्याल; और बिगड़ते समाज की चिंता। इन सबके बीच से निकलती हुई एक दूरदृष्टि और दर्शन भी इन कविताओं में है। शीर्षकहीन छोटी कविताओं से एक छोटी कविता जो उनके दार्शनिक मन का परिचय देता है। जिंदगी को यकीन न हुआ/वह सब इतना बेमानी हो सकता है/जो इतना ठोस लगता/इतना आसमानी हो सकता है।'

उनके संदर्भ में यह याद रखा जाना चाहिए कि वे जितने अपनी कृतियों में कवि हैं, उतने ही अपने जीवन में भी रहे। उन्होंने अपनी कविता में प्रतीकात्मक रूप में कहा भी है कि मैं कभी अपनी कविताओं का अंत नहीं लाना चाहता। उस जीवंत नाते को बनाए रखना चाहता हूं जिसे अंत समाप्त कर देता है। वे हमेशा अनंतिम कविताएं लिखना चाहते थे, इस इसलिए अंतहीन भी। संग्रह की समास कविता की कुछ पंक्तियां-सब कुछ आपस में/घुला-मिला/एक दूसरे में रचा-बसा/अनुभवों की जान है बहुलता/... .../जैसे एक निडर प्यार/दुनिया की किसी भी हद को न माने/लोगों के बीच/न माने फर्क/और तब बनाए अपनी एक पहचान।

'दिशाओं का खुला आकाश' पुस्तक में कुंवर नारायण कविता के बारे में अपने डायरी अंश में दर्ज करते हैं- कविता स्वभाव से आत्मविश्लेषी और आत्मान्वेषी विधा है। रोज के मामलों-वाले जीवन की भनक तो उसमें रहती है, पर उस यथार्थ का अगर पूरा बोझ उस पर डाला जाए, तो कविता का नाजुक ढांचा चरमरा उठता है। कविता से हम वह काम नहीं ले सकते जिसके लिए साहित्य की अन्य विधाएं ज्यादा उपयुक्त ठहरती हैं, जैसे उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि। यह बात कविता के महत्व के विरुद्ध नहीं जाती कि मूलतः वह मनुष्य की सबसे आत्मिक और कल्पनाशील चेष्टा है।

सप्तक में शामिल कुंवर नारायण ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जो अज्ञेय, मुक्तिबोध के बाद साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपरा को आगे बढ़ाने में सक्षम सिद्ध हुए। यही कारण है कि उनकी कविता चिंतनशील मस्तिष्क को उर्वर भूमि प्रदान करती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी बेहतर कविता लिखने का रास्ता सुझाती है। उनकी कविताओं में सूक्ष्म मानवीय अनुभूतियों के साथ विराट साभ्यतिक चिंतन एवं कल्पना का सहज समावेश दिखता है। वे हमेशा अनंतिम कविताएं लिखना चाहते थे, इसलिए अंतहीन भी। 'सब इतना असमाप्त' संग्रह की कविताएं भी अपने आप में उनकी इस चिंता को मूर्त करती हैं और इस तरह अंत और आरंभ की एक व्यापक और परस्पर अभिन्न परिकल्पना हमारे सामने रखती हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध ने कवि कुंवर नारायण की

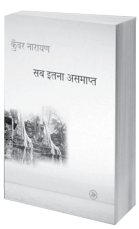

पुस्तक :
सब इतना असमाप्त
कवि: कुंवर नारायण
प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2018
पृष्ठ : 108
मूल्य : ₹ 295

कविता में अंतरात्मा की पीड़ित विवेक चेतना और जीवन की आलोचना पाते हैं और वे आगे कहते हैं कि कवि अपने सारे संवेदनशील मनुष्यत्व के साथ जीना चाहता है और अपने क्षणों को सार्थक करना चाहता है। मनुष्यता के प्रति यह संवेदनशीलता उनमें अंतिम क्षणों तक बनी रही।

वे इतने सुसंस्कृत और निराकांक्षी थे कि उनका हिंदी लेखक होना लगभग अचरज में डालता है; क्योंकि हिंदी में निराकांक्षी लेखक बहुत कम हैं, बहुत कम हुए हैं। इस संग्रह में कई ऐसी कविताएं हैं जो कुंवर नारायण को प्रेम और दार्शनिकता का महान कवि सिद्ध करता है। हिंदी में उनके पाये का दूसरा कोई दार्शनिक कवि दिखाई भी नहीं देता। मनुष्यता और नैतिकता ही उनका सबसे बड़ा दर्शन रहा है। उनके सरोकार इतने अधिक विस्तृत थे, जितने विश्व के किसी अन्य बड़े कवियों का रहा है। उन्हें हम विश्व कवियों की बिरादरी का हिस्सा मान सकते हैं।

दार्शनिक विट्गेनश्टाइन की पंक्ति-'हमारी भाषा की सीमाएं हमारे संसार की सीमाएं हैं।' को समर्पित शब्द जो खो जाते हैं कविता में कुंवर जी कहते हैं, ऐसा ही एक शब्द था शांति/अब विलुप्त हो चुका उसका वंश/कहीं नहीं दिखाई देती वह/न किसी के अंदर न बाहर/कहते हैं मृत्यु के बाद वह मिलती है। आज के सामाजिक परिदृश्य पर इन पंक्तियों को एक गंभीर टिप्पणी के रूप में लिया जा सकता है। इसी तरह आज के समय में राजनीति और बाजार में-मनुष्य होना, पूर्ण होना, अच्छा होना, ईमानदार होना जैसे शब्द अपना अर्थ खोते चले गए हैं, उनमें कुंवरजी ने नए अर्थों का आलोक भरा। वे नई भाषा नहीं गढ़ते बल्कि उपलब्ध भाषा को अपने प्रयोग से आलोकित करते हैं। उन्होंने मानवीय अस्तित्व, मानवीय नियति, मानवीय भविष्य, मानवीय नश्वरता और मानवीय संप्रेषण-भाषा को लेकर भी लगातार चिंता की।

संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कुंवर नारायण अपनी सादगी, संवेदनशीलता और सौम्यता की विरासत कविता को सौंप गए हैं। सब इतना असमाप्त पुस्तक को छूने का सुंदर अहसास देर तक बना रहता है और शामिल कविता भी हमें हमेशा सुंदर देखने की प्रेरणा देती है जो एक बड़े कवि का अभीष्ट होता है।

संग्रह में शामिल 'आतिथ्य' भी महत्वपूर्ण कविता है, जिसकी पंक्तियां हैं-शायद मैं ही उसकी भाषा को/नहीं समझ सका था, जो/एक छाया की तरह विनम्र/और एक मर्मर की तरह हार्दिक थी। मर्मर, विनम्र और हार्दिक जैसे शब्दों का प्रयोग कर हिंदी भाषा के विरल पक्ष की ओर देखने का मानो संकेत कर रहे हों। एक बड़ा कवि ऐसे ही चीजों को देखता है जो साधारण लोगों की नजरों से फिसल जाता है।

संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कुंवर नारायण अपनी सादगी, संवेदनशीलता और सौम्यता की विरासत कविता को सौंप गए हैं। सब इतना असमाप्त पुस्तक को छूने का सुंदर अहसास देर तक बना रहता है और शामिल कविता भी हमें हमेशा सुंदर देखने की प्रेरणा देती है जो एक बड़े कवि का अभीष्ट होता है।

प्रकाशकों से निवेदन

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा एक अरसे से 'पुस्तक-वार्ता' का प्रकाशन कर रहा है। हिंदी में प्रकाशित हो रही साहित्यिक पत्रिकाओं में 'पुस्तक-वार्ता' एकलौती पत्रिका है जो कि पूर्ण रूप से पुस्तक समीक्षा विधा को समर्पित है। यह पत्रिका साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रकाशित नयी पुस्तकों की समीक्षा प्रतिष्ठित आलोचकों - समीक्षकों से करवाकर प्रकाशित करती है और उसे पाठकों तक पहुंचाने के लिए एक सेतु का काम करती है। आप सुधी प्रकाशकों और सभी लेखक बंधुओं से अपनी नई पुस्तकों की दो प्रतियां निम्न पते पर भिजवाने का अनुरोध है-

संपादक 'पुस्तक-वार्ता'
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
पोस्ट- गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

साहित्यकारों पर एक जरूरी विमर्श

अशोक नाथ त्रिपाठी

सहायक प्रोफेसर

संपर्क :
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
म.ग.अ.हिं.वि.वि.
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 9423645364

आजकल

आजकल पत्रिका अपने कलेवर में हमेशा से समसामयिक और गंभीर सामाजिक हलचल को अपने विचार का केंद्र बिंदु बनाती है प्रस्तुत अंक का मुख्य आकर्षण विष्व हिंदी सम्मेलन और प्रवासी हिंदी साहित्य है। इसके पूर्व इस पत्रिका ने केदारनाथ सिंह, अमृतलाल नागर पर केंद्रित अंकों के माध्यम से काफी सराहना प्राप्त की है। हिंदी और हिंदुस्तानी को लेकर गांधीजी के मन में क्या विचार था इसको भी संपादकीय में रेखांकित किया गया है, जिसमें गांधीजी कहते हैं-'अंग्रेजों को हम गाली देते हैं कि उसने हमें गुलाम बनाए रखा लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद गुलाम बन गए हैं। गांधीजी का यह कथन काशी हिंदू विश्वविद्यालय में दिए गए वक्तव्य का एक अंश है। इसी संपादकीय में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना और उसके उद्देश्यों पर भी विचार किया गया है। विष्व हिंदी सम्मेलन पर विचार करते हुए संपादक महोदय यह कहना चाहते हैं कि इस बहाने वे अपने पाठकों को हिंदी के बढ़ते और फैलते, पल्लवित होते संसार से परिचय कराना है और उनको समझने का अवसर प्रदान करना है। कमल किशोर गोयनका ने अपने आलेख 'हिंदी का प्रवासी साहित्य : दशा और दिशा' में यह बताना चाहते हैं कि प्रवास मानवीय समाज का शाश्वत सत्य है। लेकिन इस सत्य में जो पीड़ा निहित है उसे भी हमें जांचने की जरूरत है। उनका मानना है कि प्रवास कई नए अनुभव भी प्रदान करता है और इसके उदाहरण के रूप में वह गांधीजी को रखते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वर्गीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के समय में ही प्रवासी भारतीय या डायस्पोरा की चर्चा प्रारंभ हुई, प्रवासी दिवस मनाने का कार्य इन्हीं के समय में प्रारंभ किया गया। उनका यह मानना है कि मॉरीशस, फिजी, अमेरिका, इंग्लैंड सभी का इतिहास, परिवेश, प्रकृति, समाज, संस्कृति, धर्म, जीवन-मूल्य, परंपरा आज तक भारत से भिन्न है, अतः भारत एवं भारतेत्तर साहित्य में एक रूपता नहीं मिल सकती। यहां तक कि मॉरीशस और अमेरिका का हिंदी साहित्य भी सामान नहीं है। कई कोनों से विचार करते हुए उनका यह मानना है कि प्रवासी साहित्य ने हिंदी साहित्य में एक नई दिशा खोली है, नए प्रकार के साहित्यिक संस्कार का सृजन किया है एवं हिंदी का वैश्विक विस्तार भी किया है। कृष्ण कुमार गोस्वामी अपने आलेख 'हिंदी का वैश्विक संदर्भ' में यह बताना चाहते हैं कि हिंदी के साहित्य और सृजनात्मक अभिव्यक्ति का एक आयाम उसके वैश्विक और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ से भी जुड़ता है। गोस्वामी गुयाना का हवाला देते हुए कहते हैं कि यहां पर 1838 में प्रवासी भारतीयों का आगमन हुआ, यहां पर हिंदी भाषी 28 प्रतिशत है किंतु भाषा क्रियोल ही है। इसी क्रम में वे टोबैगो के संबंध में आज का हवाला देते हैं। अपने इस आलेख में उन्होंने प्रवासियों का वर्ण विभाजन किया है और उन देशों के तमाम प्रवासी साहित्यकारों का भी हवाला दिया है और यह बताने का प्रयास किया है कि प्रवासी साहित्यकारों के माध्यम से हिंदी की वैश्विक स्थिति मजबूत होती जा रही है। अमरेंद्र मिश्र ने मॉरीशस के प्रसिद्ध साहित्यकार अभिमन्यु अनत पर 'इसीलिए अभिमान अलग थे' शीर्षक से विचार किया है। संस्मरणात्मक आलेख में अलग से जुड़ी तमाम बातें इसमें की गई हैं। अभिमन्यु अनत का भारत प्रेम सर्वविदित था, इसका वे कई बार इजहार भी कर चुके थे। कमल किशोर गोयनका को दिए गए एक साक्षात्कार में तो उन्होंने इस बात की घोषणा भी की थी कि उनकी रचनात्मकता में भारत की अहम भूमिका है। रामदरश मिश्र 95वें वर्ष में प्रवेश करने पर ओम निश्चल ने साहित्य की एक बड़ी इकाई शीर्षक से अपनी बात कही है। उनका मानना है कि रामदरशजी एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने 20 वीं सदी को तो जाना ही है 21 वीं सदी भी उनसे अछूती नहीं है। उनके लेखकीय अवदान के बारे में विचार करते हुए वे लिखते हैं कि रामदरश मिश्र के भीतर सदियों का संताप, आह्लाद, उत्सवधर्मिता के साथ साहित्य मूल्यों को स्थापित करने के तत्व विद्यमान हैं। रामदरश मिश्र के स्वभाव की विशेषता का आकलन किससे किया जा सकता है कि कोई भी लेखक उनके साथ रहकर अपने को छोटा नहीं मानता है। सफलता की कुंजी हैं उनकी मुस्कुराहट, उनके जीवंत रचनाकार का विज्ञापन नजर आती है। लेख के माध्यम से रामदरश मिश्र के व्यक्तिगत और रचनात्मक जीवन से रूबरू होने का एक सुखद अवसर प्राप्त होता है। राधेश्याम

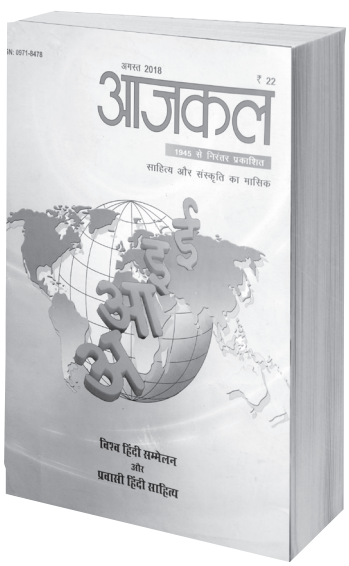

तिवारी ने रामदरश मिश्र से साक्षात्कार लिया है, इसका शीर्षक है-'प्रशंसा ही रचना की सबसे बड़ी उपलब्धि'। इस साक्षात्कार में रामदरशजी इस बात को लेकर काफी आश्वस्त नजर आते हैं कि उनकी रचनाओं को पाठक पसंद करते हैं। समकालीन रचनाकारों की रचनात्मकता पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं-'कुछ लोग रचना में काफी ठंड डाल देते हैं। मैं सहज भाव से हल्के प्रभाव से अपनी कविताएं प्रस्तुत करता हूं। अभी स्वीकार करते हैं कि ठाकुर प्रसाद सिंह ने लोकगीत को नई दिशा दी। इसी अंक में रामदरशजी की 10 कविताएं दी गई हैं, जिनके माध्यम से भी रामदरश मिश्र की रचनात्मकता को देखा जा सकता है। बालकवि बैरागी अरविंद कुमार सिंह का आलेख है, जिसमें वह दिनकर के हवाले से कहना चाहते हैं कि लाल किले के कवि सम्मेलनों में आज एक एक कवि बालकवि बैरागी को सुना। वह सभा में बिजली भर देता है। रजनी गुप्त की कहानी 'रंग ढंग' में भी कई मौजूद प्रश्नों को उठाने का प्रयास किया गया है। आजकल के प्रस्तुत अंक ने जिस तरह से साहित्य सामग्री का संयोजन किया है। वह एक सराहनीय प्रयास है और संपादक इसके लिए बधाई के हकदार हैं।

साहित्य विकल्प

साहित्य विकल्प पत्रिका लघु पत्रिकाओं में अपनी जोरदार उपस्थिति बनाए हुए हैं। समीक्षित अंक हिंदी के वरिष्ठ कहानीकार कवि आलोचक दूधनाथ सिंह पर केंद्रित किया गया है। इस अंक का संयोजन दो खंडों किया गया है। प्रथम खंड को संस्मरण और द्वितीय खंड को मूल्यांकन के रूप में देखा जा सकता है। पांच रंगीन पृष्ठों में दूधनाथ सिंह की छवि संयोजित की गई हैं। विजय अग्रवाल ने इलाहाबाद की साहित्यिक गतिविधि को याद करते हुए अपने संपादकीय का शीर्षक दिया है 'वे दिन चले गए जब हम थे!' संपादकीय में इलाहाबाद के तमाम साहित्यकारों की सूची पेश करते हैं और यह बताने का प्रयास करते हैं कि उन साहित्यकारों के कारण भी इलाहाबाद पूरे देश में चर्चित होने के साथ साहित्य की गतिविधि का केंद्र रहा है। इन साहित्यकारों ने एक तरफ अपने अवदान से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। साथ ही साथ एक स्वस्थ साहित्य परंपरा की नींव भी डाली, उसी क्रम में दूधनाथ सिंह भी इलाहाबाद की एक धरोहर माने जा सकते हैं। हालांकि दूधनाथ सिंह यहां उर्दू का अध्ययन करना चाहते थे लेकिन उन्होंने हिंदी साहित्य का चुनाव किया। दूधनाथ सिंह के घुमंतू स्वभाव ने ही उन्हें श्रेष्ठ कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसी संपादकीय में उन्होंने यह भी व्यक्त करने का प्रयास किया कि दूधनाथ सिंह ने अनेक युवा रचनाकारों को समर्थ रचनाकार के रूप में स्थापित किया। 'अपनी शताब्दी के नाम' पुस्तक में दूधनाथ सिंह ने आजादी के बाद की स्थिति पर तीखा व्यंग्य किया है। व्यवस्था के विरोध पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि प्रजातंत्र वाणी की स्वतंत्रता भाईचारा सब एक दिखावा है। दूधनाथ सिंह अपनी कविता की पंक्ति में स्वयं कहते हैं-

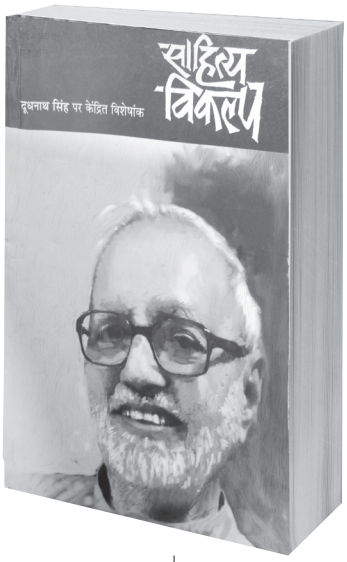

'मुझ में एक युग है
जो परेशान है'

स्मरण खंड में अरुण कमल, काशीनाथ सिंह, धनंजय वर्मा, विजय बहादुर सिंह, विष्वनाथ त्रिपाठी, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, तेजिंदर, विभूति नारायण राय, जैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'दूधनाथ की कविताएं पढ़कर' शीर्षक संस्मरण मूलतः एक कविता है जिसमें अरुण कमल बड़ा मार्मिक बिंब उठाते हैं-

'वह कौन कवि है जिसे पसंद है धतूरे का फूल
वह कौन देव जिसे प्रिय है फल धतूरे का
वह खड़ा रहा रात भर हरसिंगार के नीचे
यह देखने कि कब गिरता है पहला फूल
वृंत से खुलकर फिर सब खुल खुल देखा देखी
या अंदर की डाक पर मिट्टी पानी की पुकार पर
कैसे चंपई रंग लगता है सफेद पंखुड़ी से
सफेद उजाला या धवल दूधिया या
चांद के रंग का
कितना कच्चा है फूलों का रंग ओस रंग'

इसी अंक में दूधनाथ की कविताओं के अतिरिक्त मुक्तिबोध पर लिखा उनका बेहतरीन लेख है। वे बताना चाहते हैं कि 'मुक्तिबोध जितने बड़े कवि हैं उतने बड़े आलोचक भी थे।' इस क्रम में दूधनाथ एक अंग्रेजी की किताब का उल्लेख करते हैं 'थ्री मोमेंट ऑफ फ्लेरेसिंग ए पोएट्री' जिसमें एक लेख मुक्तिबोध के तीसरा क्षण के लेख से मिलता जुलता है। उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि मुक्तिबोध ने जो मिथक गढ़े हैं वह उनके पहले कविता में नहीं थे। जिसे हम लोक मिथक भी कह सकते हैं। उनमें से ब्रह्मराक्षस का भी मिथक है। 'यादों में दूधनाथ' शीर्षक से काशीनाथ सिंह का संस्मरण है। वह कहते हैं कि-'दूधनाथ अकहानी आंदोलन से नई कहानी के दौर के रचनाकार रहे हैं। 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रे' संकलन की कहानियां उनकी उत्कृष्ट कहानियां है।' वह भी मानते हैं कि जिस प्रकार का दूधनाथ का सर्जनात्मक लेखन है उसी प्रकार का आलोचनात्मक लेखन भी है। दूधनाथ ने जिस रचनाकार पर अपनी लेखनी चलाई उसे अमर कर दिया। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने 'मन से बहुत बे चैन आदमी' शीर्षक से अपनी बात कहते हुए यह बताने का प्रयास करते हैं कि 'आखिरी कलाम' उनका चर्चित उपन्यास है और यह थोड़ा बहुत विवादास्पद भी है। हालांकि इसमें दूधनाथ सिंह ने जिस तटस्थता से सामाजिक ऐतिहासिक धार्मिक पक्षधरता को दिखाने का प्रयास किया है, वह दुर्लभ है। ममता कालिया 'एक और जीनियस की रुखसती' शीर्षक से दूधनाथ के अवदान को रेखांकित करती हैं। विभूति नारायण राय अपने आलेख 'दूधनाथ के बाद इलाहाबाद' में यह कहना चाहते हैं कि उनके बाद इलाहाबाद उजाड़ हो गया। वे यह मानते हैं कि कई बार एक बड़े रचनाकार पर किशोर भी हावी हो जाता है। उनका मानना है कि अपनी चमत्कारी भाषा, जबरदस्त ऑब्जर्वेशन शैली, अद्भुत कथन शैली के कारण दूधनाथ सिंह का लेखन औरों से अलग दिखाई पड़ता है। 'एक धूप थी जो आफताब के साथ चली गई' शीर्षक से अली अहमद फातमी ने अपने विचार को व्यक्त किया है। मूल्यांकन के क्रम में खगेंद्र ठाकुर ने दूधनाथ सिंह के गद्य पर विचार करते हुए लिखा है कि 'दूधनाथ सिंह ने कहानी, कविता, उपन्यास, संस्मरण आदि विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है।' ए. अरविंदाक्षन ने उनकी कहानियों पर विचार किया है। इसी अंक में उनके उपन्यास 'आखिरी कलाम' पर तरसेम गुजराल की टिप्पणी है। समग्रता में देखा जाए तो साहित्य विकल्प का यह अंक दूधनाथ सिंह के व्यक्तिगत जीवन और साहित्यिक जीवन को अनेक आयामों के साथ देखने का प्रयास करता है। इस अंक द्वारा दूधनाथ सिंह की रचनाधर्मिता के साथ ही साथ उनके व्यक्तिगत जीवन को देखने का काफी सराहनीय प्रयास किया गया है। अच्छे अंक के सफल और उत्कृष्ट संयोजन के लिए पूरी संपादकीय टीम बधाई की हकदार हैं। संपादक डॉ. विजय अग्रवाल को इस बेहतरीन प्रस्तुति के लिए साधुवाद।

वागर्थ

वागर्थ कि संघ में शंभुनाथ ने अपने संपादकीय का शीर्षक दिया है 'यह सांस्कृतिक निरक्षरता है'। इस अंक के माध्यम से समकालीन उपन्यास को समझने का प्रयास किया गया है। जब शंभूनाथ सांस्कृतिक निरक्षरता कहते हैं तो उनका आशय यह होता है कि धर्म को राजनीति के उपयोग के लिए सीमित कर देना। सांस्कृतिक निरक्षरता की स्थिति में संस्कृत भोग विलास का साधन बन जाती है, मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसी के बरक्स जब वे सांस्कृतिक साक्षरता की बात करते हैं तो यह मानते हैं कि सांस्कृतिक साक्षरता आत्ममुग्धता और अतीत मुग्धता से हमें मुक्त करती है। लेकिन आज देखा जाए तो समाज के संचालक वर्ग में धर्मनेता, राजनेता, बुद्धिजीवी आदि लोगों ने अपने चिंतन के किवाड़ बंद कर रखे हैं। इसी क्रम में वे राजनीति विचार पर भी विचार करते हैं। समकालीन उपन्यास पर चर्चा के दौरान उपन्यासकार और दूसरी तरफ कथा आलोचकों ने अपने विचार रखे हैं। इस पर चर्चा की प्रस्तुति पीयूश कांत ने की है, जिसमें वह मानते हैं कि कभी उपन्यास में जो लोकल हुआ करता था, आज के इस अस्मितावादी विमर्श में उस लोकल की उपादेयता बढ़ा दी है। उन्होंने इस परिचर्चा में कई महत्वपूर्ण बिंदुओं को दिखाने का प्रयत्न किया है। जिनमें आजादी के बाद के उपन्यासकारों की स्थिति, 1960 के बाद हिंदी उपन्यासकार के अंतर्वस्तु आदि मुख्य बिंदु हैं। इन बिंदुओं से गुजरते हुए मधुरेश, कथाकार संजीव, आलोचक शंभु गुप्त, वीरेंद्र यादव, भगवानदास मोरवाल, रघुवंश मणि, वैभव सिंह आदि ने अपने विचार के माध्यम से कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है। राकेश रंजन ने 'भारत भारती : उच्छिन्न होकर अर्धमृत-सा छटपटाता सा देश है' शीर्षक से अपनी बात कहते हैं। वे मानते हैं कि भारत भारती आधुनिक काल में काव्य की लोकप्रियता का शिखर है। इसी आलेख में भारत भारती की छंद योजना को मानस की छंद योजना से जोड़ते हैं। अगर इसे तीन खंडों में देखने की बात करें तो एक तरफ अतीत का बखान, दूसरी ओर वर्तमान की दुर्दशा तथा तीसरी ओर भावी विकास के लिए जनता का उद्बोधन देखा जा सकता है। बसंत त्रिपाठी ने अपने आलेख 'सुमित्रानंदन पंत की प्रयोगशीलता बारास्ते 'परिवर्तन'' के माध्यम से पंत को देखने का प्रयास किया है जिसमें वे मानते हैं कि इसमें बिंबो की नवीनता के साथ-साथ मनुष्य के जीवन को उसके बचपन के विस्तार के रूप में देखना है। रमेश उपाध्याय की कहानी 'मौत से पहले आदमी' मन को छू जाती है। अनुज लुगुन, मनोज कुमार झा की कविताएं संवेदना को स्पर्श करती है। झेवाहिर स्पाहियू की कविता 'आजादी का गीत' तथा 'इतिहास' अच्छी हैं। इस अंक के संयोजन को देखकर यह कहा जा सकता है कि शंभुनाथजी ने बड़े मनोयोग से इस कार्य को निभाया है इसके लिए वे बधाई के हकदार हैं।

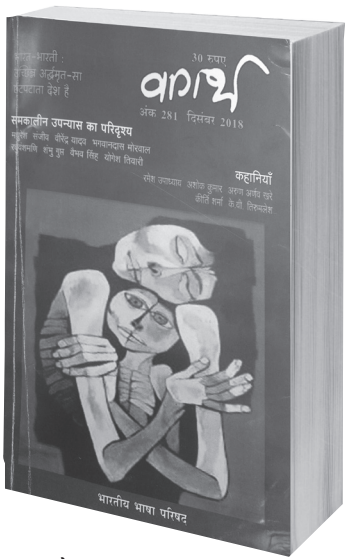

इंद्रप्रस्थ भारती

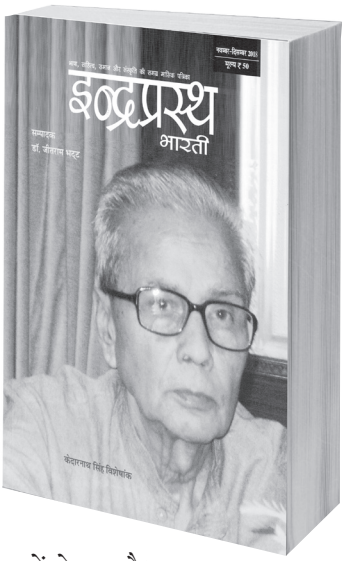

यह हिंदी अकादमी, दिल्ली की पत्रिका है। मासिक आवर्तिता वाली इस पत्रिका का नवंबर-दिसंबर, 2018 अंक केदारनाथ सिंह विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया है। केदारनाथ सिंह को हम एक ऐसा कवि कह सकते हैं जो हिंदी के लोक के प्रतिनिधित्व का प्रतीक रहा है। कविता में केदारनाथ सिंह की उपस्थिति उसे समृद्ध करने के साथ-साथ अपने धरती की बात करती प्रतीत होती है। विशेषांक को संपादकीय विवेक के तहत चार खंडों - कविताएं, निबंध, बातचीत व उनकी कविताओं पर लिखे गए लेख में विभाजित किया गया है। युद्ध और मानवीय संवेदना शीर्षक लेख में केदारनाथ सिंह लिखते हैं - 'शब्द की शक्ति में मेरा विश्वास है, इसलिए समझता हूं कि युद्ध के संकट का विरोध साहित्य के अध्ययन में संभव है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि साहित्य युद्ध को समाप्त कर सकता है। हम सभी जानते हैं कि युद्ध के कारण साहित्य के बाहर होते हैं, पर मानवीय संवेदना को जगाने की शक्ति इसमें होती है। इस संदर्भ में यह एक बड़ा हथियार है। साहित्यकार इसी हथियार से युद्ध की विभीषिका से लड़ता आया है और लड़ता रहेगा।' अंक में केदारनाथ सिंह की विभिन्न संग्रहों से लगभग पचास से अधिक कविताएं पाठकों को यहां पढ़ने को मिलती हैं जिसमें अकाल में सारस, लौटते हुए बगुले, कपास के फूल, बारिश जैसी कविताएं शामिल हैं। ये कविताएं किसी भी पाठक को अपनी ओर बांधने में समर्थ हैं और भाषा का खिलंदड़ापन भी यहां देखने को मिलता है। केदारनाथ सिंह से वीरेश चंद्र की बातचीत बहुत चलते-चलते वाले अंदाज में है, यही वजह है कि वह कोई व्यापक प्रभाव नहीं छोड़ती। केदारनाथ सिंह की कविताओं पर लीलाधर मंडलोई अपने लेख में लिखते हैं-'केदारजी की कविताओं की कुछ विलक्षण खूबियां हैं, मसलन वे दृश्यात्मक हैं, लोककथा के आस्वाद में पगी, भौतिक- अभौतिक जगत में डूबीं, हिप्नोटाइज करने की ताकत से लैस और आत्मीय सजल भाषा से दीप्त।' मंडलोई चूंकि खुद कवि हैं इसलिए उनका यह कथन कवि की कविताओं का सजग मूल्यांकन है। अंक में ज्योतिष जोशी और हेमंत कुकरेती और अन्य के भी लेख हैं। इंद्रप्रस्थ भारती का यह अंक महत्वपूर्ण और संग्रहणीय है जिसके लिए संपादक मंडल बधाई के हकदार हैं।

संदर्भित पत्रिकाएं

1. आजकल (अगस्त, 2018) : प्रधान संपादक राकेशरेणु, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 601 डी, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कांप्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, मू. ₹22/-

2. साहित्य विकल्प (जून, 2018) : सं. विजय अग्रवाल, 49-बी/37, न्याय मार्ग इलाहाबाद-211001, मू. ₹150/-

3. वागर्थ (दिसंबर, 2018) : सं. शंभुनाथ, 36ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता- 700017, मू. ₹ 100/-

4. इंद्रप्रस्थ भारती (नवबंर-दिसंबर, 2018) : सं. जीतराम भट्ट, हिंदी अकादमी समुदाय भवन, पदम नगर, दिल्ली-07, मू. ₹50/-

पत्रिकाओं के प्रवेशांक

इस तरह शुरू हुई थीं ये ऐतिहासिक पत्रिकाएँ

कल्पना (सं. आर्येंद शर्मा) सन् 1949

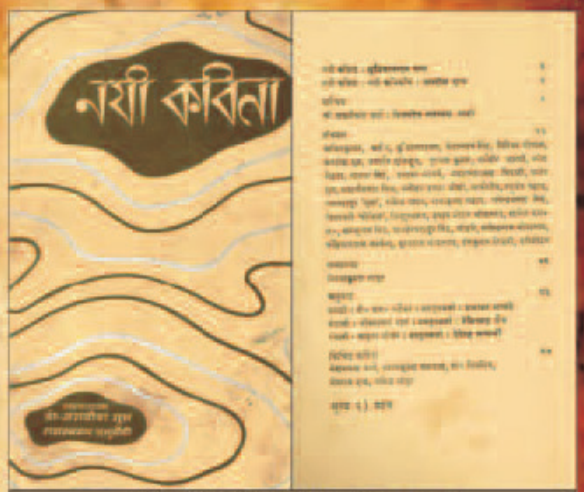

नयी कविता (सं. जगदीश गुप्त) सन् 1964

समय (सं. वेदनन्दन) सन् 1966

दस्तावेज (सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी) सन् 1978

नान्दी (सं. विद्यानिवास मिश्र) सन् 1987

कथा दशक (सं. सतीश जमाली) सन् 1989

उक्त पत्रिकाओं के प्रवेशांक स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में संरक्षित है।

ज्ञान शांति मैत्री

प्रकाशन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सदस्यता आवेदन पत्र

'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'बहुवचन' त्रैमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 400 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रु. (व्यक्तिगत)
'पुस्तक-वार्ता' द्विमासिक पत्रिका : वार्षिक सदस्यता शुल्क : 370 रु. (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)

(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएंगें। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

बैंक ड्राफ्ट 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा' के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें। किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट स्वीकार्य होगा।

प्रकाशन प्रभारी
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)
फोन नं. 07152-232943

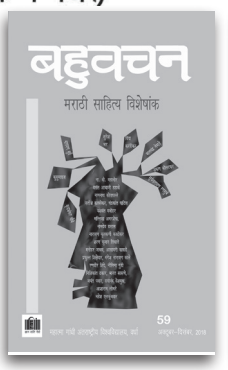

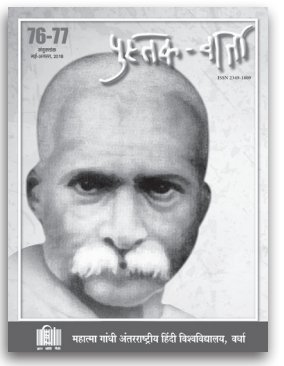

Bank Details for Online Payment :
Name: Finance Officer, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name: **Bank of India, Wardha** Account No.: **972110210000005**
IFSC Code No.: **BKID0009721** MICR Code No.: **442013003**

बहुवचन/पुस्तक-वार्ता पत्रिका के अंक ..... से ..... के लिए

रुपये ..... का बैंक ड्राफ्ट संख्या ..... दिनांक .....

संलग्न कर रहा हूँ/कर रही हूँ, कृपया मेरी प्रति निम्नलिखित पते पर भेजे :-

नाम : .....

पता : .....

दूरभाष : ..... ई-मेल : .....

दिनांक : .....

(सदस्य के हस्ताक्षर)

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

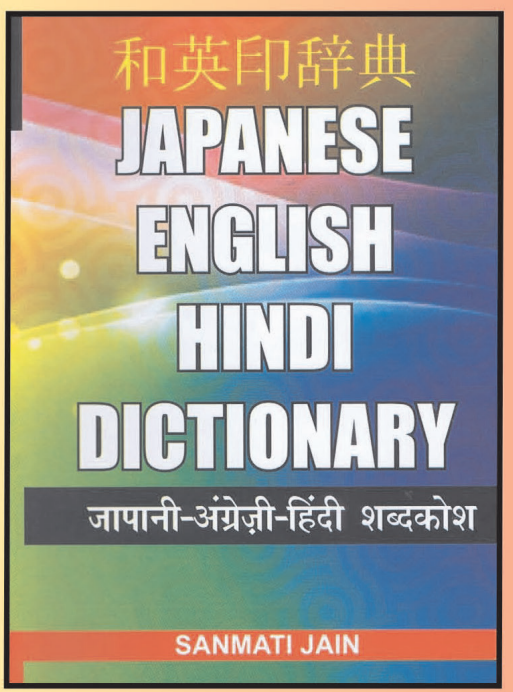

मूल्य : 595

मूल्य : 550

मूल्य : 1750

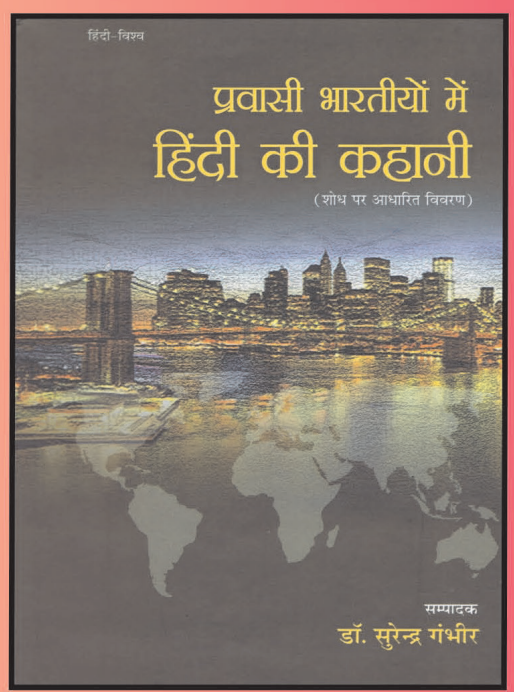

मूल्य : 400

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

गांधी हिल्स, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र)

उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य, नाटक, निबंध, आलोचना, विमर्श, बाल साहित्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, सिनेमा, विविध, खोज कोश, समय-संचयन, आडियो/विडियो, अनुवाद, हमारे रचनाकार, हिंदी लेखक, संपर्क, विश्वविद्यालय, संग्रहालय, ब्लॉग समय

ज्ञान शांति मैत्री

विश्वविद्यालय की पत्रिकाएँ :

विश्वविद्यालय के प्रमुख प्रकाशन

प्रकाशन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
गांधी हिल्स, पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442 001 (महाराष्ट्र) भारत
फ़ोन : (07152) 232943, फ़ेक्स : (07152) 230903
वेबसाइट : www.hindivishwa.org